यजुर्वेदीय उपनिषद

लेखक

सुरेश चौधरी 'इंदु'

शुक्तिका प्रकाशन

यजुर्वेदीय उपनिषद

YAJURVEDIYE UPNISHAD ***By*** **Suresh Choudhary 'Indu'**

ISBN : 978-81-998530-9-6

प्रकाशक :

शुक्तिका प्रकाशन

माइंडस्टार वेलनेस प्राइवेट लिमिटेड

24, हरिंगटन मेंशन

8, हो ची मिन्ह सारणी, कोलकाता-700071

email : ritzoff@gmail.com

मो. : +91 82409-61596

लेखक : **सुरेश चौधरी 'इंदु'**

© सर्वाधिकार लेखकाधीन सुरक्षित

मूल्य : 350/-

संस्करण : 2026

शब्द सज्जा : परमानंद झा, मो. : 95550-21641

मुद्रक : मिश्का इन्फोटेक, कोलकाता

अनुक्रमणिका

1. प्राक्कथन 05
2. उपनिषद - एक परिचय 07
3. कठोपनिषद - यजुर्वेद 19
4. तैतिरीय उपनिषद - कृष्ण यजुर्वेद 69
5. श्वेताश्वेतर उपनिषद - कृष्ण यजुर्वेद 125
6. कवि परिचय 169

प्राक्कथन

यर्जुवेदीय : वेद से वेदान्त तक

''**वेद से वेदान्त तक**'' ग्रंथ को वेदानुसार विभाजित करने के क्रम में प्रस्तुत यह यजुर्वैदिक खंड कर्म और ज्ञान के वैदिक संबंध को उद्घाटित करता है।

यजुर्वेद मूलतः यज्ञ, विधि और आचार का वेद है, किंतु इसकी दार्शनिक परिणति कर्मकाण्ड में नहीं, बल्कि **कर्म से उत्पन्न विवेक** में होती है। यहाँ यज्ञ बाह्य अनुष्ठान न रहकर आत्मशुद्धि का साधन बन जाता है।

इस पुस्तक में यजुर्वेद से संबद्ध प्रमुख उपनिषदों—**कठोपनिषद, तैत्तिरीय उपनिषद तथा श्वेताश्वतर उपनिषद**—को समाहित किया गया है।

कठोपनिषद मृत्यु और आत्मा के रहस्य को उद्घाटित करता है;

तैत्तिरीय उपनिषद अन्न से आनंद तक की आत्मयात्रा को रेखांकित करता है;

श्वेताश्वतर उपनिषद ईश्वर, जीव और प्रकृति के तत्त्वमीमांसा को प्रस्तुत करता है;

यह ग्रंथ यजुर्वेद को **कर्मप्रधान वेद से ज्ञान प्रधान वेदान्त** तक पहुँचाता है।

आपका

—सुरेश चौधरी 'इंदु'

दिनांक : 15 दिसंबर, 2025

तिथि : पौष कृष्ण पक्ष एकादशी

उपनिषद : एक परिचय

हे प्राणदाता!
व्योम में व्याप्त शून्य की गंभीरता,
सागर की गहराई में समाई नीरवता,
समाहित करती-
धरा की सहनशीलता
ॐकार के त्रिगुणों से आभासित कर,
ब्रह्म है आत्म-चिंतन,
विष्णु; भौतिक संरक्षक
शिव; कल्याणकारी मोक्ष प्रदाता,
तीनों का प्रतिरूप ओम्,
समग्र रूप से ओम्-मय कर,
ब्रह्म का वैश्वानर
सम्पूर्ण कामनाओं को
परिपूर्ण करता तेजस रूप
ओकार!
संतति का उत्कर्ष,
ब्रह्म-ज्ञान का समर्पण
सब को सम्मानित करता
उकार!
भूत-भविष्य-वर्तमान से मुक्त
आदि-अंत-अनादि से परे प्राज्ञ ब्रह्म
मकार!
ॐकार-निर्भय ब्रह्म पद,
मेरे चित्त को इस प्रणव में,
समाहित कर।

उपनिषदों में ओम् शब्द को बहुत महत्व दिया गया है। कठोपनिषद् कहती है कि सारे वेद जिस पद का वर्णन करते हैं, जिसकी साधना के लिए सारे तप किये जाते हैं, जिसकी इच्छा से मुमुक्षुजन ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं; वह पद है ओम् यह अक्षर ही परब्रह्म है। यह अक्षर ही अपर ब्रह्म है। इस अक्षर को ही 'यही उपास्य ब्रह्म है'-ऐसा जानकर जो स्त्री या पुरुष पर अथवा अपर; जिस ब्रह्म की इच्छा करता है, उसे वही प्राप्त हो जाता है। यदि उसका उपास्य परब्रह्म हो तो वह केवल जाना जा सकता है और यदि अपर ब्रह्म हो तो प्राप्त किया जा सकता है। यही ॐकार रूप आलम्बन ब्रह्म प्राप्ति के लिए सभी आलम्बनों में श्रेष्ठ यानी सबसे अधिक प्रशंसनीय है। इस आलम्बन को जानकर साधक परब्रह्म में स्थित होकर महिमान्वित होता है तथा अपरब्रह्म में ब्रह्मत्व को प्राप्त होकर ब्रह्म के समान उपासनीय होता है। माण्डूक्योपनिषद् के अनुसार यह जो कुछ भूत, भविष्यत् और वर्तमान है, उसी की व्याख्या है इसलिए यह सब ॐकार ही है। इसके सिवा जो तीनों कालों से परे, अपने कार्य से ही विदित होने वाला और काल से अपरिच्छेद्य आदि है, वह भी ॐकार ही है। आत्मा और इसके पादों के साथ ॐकार और उसकी मात्राओं का तादात्म्य करते हुए कहा गया है कि वह यह आत्मा अक्षर दृष्टि से ॐकार है एवं मात्राओं के साथ संयोग के कारण इसमें स्थैर्य है। पाद ही मात्रा हैं और मात्रा ही पाद हैं। वे मात्राएँ अकार, उकार और मकार हैं। ब्रह्म का वैश्वानर रूप पहली मात्रा अकार है। जो उपासक इसके गूढ़ अर्थ को समझ लेता है, वह सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। तेजस ॐकार की द्वितीय मात्रा उकार है, जो उपासक इसके मूल अर्थ को ग्रहण करने की क्षमता रखता है, वह अपने ज्ञान एवं संतान का उत्कर्ष करता है। वह सबके प्रति समभाव रखता है और उसके वंश में कोई ब्रह्मज्ञानहीन पुरुष नहीं होता। प्राज्ञ ब्रह्म ॐकार की तीसरी मात्रा मकार है, जो

उपासक इसे तदानुरूप ग्रहण करता है, वह इस सम्पूर्ण जगत् को माप लेता है अर्थात् इसका यथार्थ स्वरूप जान लेता है। अकार विश्व-प्राप्ति में सहायक है, उकार तेजस और मकार प्राज्ञ पर अधिपत्य का साधन है किन्तु अमात्र में किसी की गति नहीं होती। मात्रा रहित होकर ॐकार तुरीय आत्मा ही है, जो उसे इस प्रकार ग्रहण करता है, वह स्वतः अपने आत्मा में ही प्रवेश कर जाता है। आप सभी चित्त को ॐकार में समाहित करें। यह निर्भय ब्रह्मपद है। ॐ में नित्य समाहित रहने वाले व्यक्ति को कभी किसी प्रकार का भय त्रस्त नहीं करता। प्रणव ही सबका आदि, मध्य और अन्त है। प्रणव ही सबके हृदय में स्थित ईश्वर है। इस प्रकार सर्वव्यापी ॐकार को जानकर बुद्धिमान व्यक्ति शोक नहीं करता। जिसने मात्राहीन, अनन्त मात्रा वाले शिवमय ॐकार को जाना है, वही मुनि है और कोई नहीं। मुण्डकोपनिषद् के अनुसार प्रणव धनुष है एवं आत्मा बाण है। ब्रह्म उसका लक्ष्य कहा जाता है। उसका सावधानी से वेधन करना चाहिए और बाण को उसमें तन्मय हो जाना चाहिए अर्थात् ब्रह्म रूपी लक्ष्य से एकरूप हो जाना चाहिए। छान्दोग्य उपनिषद् कहती है कि हमें ॐ अक्षर की ही उपासना करनी चाहिए।

व्याकरण की दृष्टि से उपनिषद का शाब्दिक अर्थ उप+नि+सद है, जिसका अक्षरशः आशय इस प्रकार है। उप - निकट, नि-नीचे, सद-बैठना। प्राचीन वैदिक काल में उच्चासन पर पदस्थ गुरु के समीप भूमि पर आसीन होकर शिष्यों को जो श्रुति ज्ञान प्राप्त होता था, वह उपनिषद कहलाता था, इस प्रकार मूलतः उपनिषद लिखित ग्रन्थ न होकर श्रुति ग्रन्थ हैं। इसे वेदांत भी कहते हैं। वेदों में हर मंडल के पश्चात सार बताया जाता था, उसे ही उपनिषद में परिवर्तित किया गया। उपनिषद में मुख्य रूप से कर्म, ब्रह्म, आत्मा, जीवात्मा आदि पर ही परिचर्चा है। वैदिक काल में एक ब्रह्म को सर्व माना गया है एवं 24 देवों का

पूजन एवं कीर्ति वर्णन है। ये सभी देव प्रकृति जन्य हैं, (अग्नि, वायु, जल, सूर्य, पूषा......आदि)

कुछ परिस्थितियों में यह पति-पत्नी के बीच तो कहीं पिता पुत्र के बीच एवं कठोपनिषद में यह तरुण युवक एवं यम के बीच का वार्तालाप है। कहीं अध्यापक नारी रूप में हैं एवं छात्र स्वयं राजा हैं। वार्ताओं के अलावा उपनिषद में उद्धरण, दृष्टांत, दृष्टव्य, रूपक भी दिए गए हैं।

गुफाओं में, आश्रम में, गंगा तट पर, सदियों से यह ज्ञान बाँटा जा रहा है। यह कह सकते हैं कि उपनिषद, श्रोत्रिय ज्ञान का अद्भुत लिपिबद्ध संकलन है।

ऐतरेयोपनिषत्, ईशोपनिषत्, कठोपनिषत्, केनोपनिषत्, मांडुक्योपनिषत् मुंडकोपनिषत् प्रश्नोपनिषत्, ताश्वतरोपनिषत्, तैत्तिरीयोपनिषत्, इन नौ मुख्य उपनिषदों का रूपांतर इस पुस्तक में दिया गया है।

अधिकांश उपनिषदों में या तो यह चार वेदों का विस्तारण है या व्यक्तव्य वेदांत के रूप में दिया गया है। उपनिषदों की विशेषता यह है कि यह पूर्ण रूपेण ब्रह्माण्ड में समाहित है एवं कट्टरवाद से परे है। उपनिषद सैद्धांतिक रूप से शून्य एवं शांति को प्राप्त करने का द्वार है। यह वैदिक संस्कृति का मेरुदंड है। मूलतः भारतीय दर्शन का भाव-विस्तरण करता यह ग्रन्थ कर्म, योग, पुनर्जन्म, मोक्ष, आत्मा, ब्रह्म, ज्ञान, प्राण को परिभाषित करता है। उपनिषद, सृष्टि की रचना उत्पत्ति के कारण एवं इसमें स्थित तत्व के विश्वास को दर्शाता है।

पाश्चात्य शोधकर्मियों के अनुसार उपनिषद ईसा से 800-400 वर्ष पूर्व लिखे गए हैं। बाल गंगाधर तिलक के शोध के अनुसार ये 6000 से 800 वर्ष ईसा से पूर्व लिखे गए हैं।

यूँ तो 250 से ऊपर उपनिषदों का वर्णन है लेकिन अब तक 108 उपनिषदों का अस्तित्व ज्ञात हैं। इनमें से 12 मुख्य उपनिषद कहे गए

हैं। ये हैं - ऐतरेयोपनिषत्, ईशोपनिषत्, कठोपनिषत्, केनोपनिषत्, मांडुक्योपनिषत् मुंडकोपनिषत्, प्रश्नोपनिषत्, ताश्वतरोपनिषत् तैत्तिरीयोपनिषत्, छान्दोग्योप्निशत्, बृहद अरण्यकोपनिषद मैतिरियानी।

वेद	सह् वेद	शाखा	उपनिषद
ऋग वेद	केवल एक	शकल	ऐतेरिय
साम वेद	केवल एक	कौथुमा	छान्दोग्य
		जैमिनीय	केन
		रणनिया	
यजुर वेद	कृष्ण यजुर्वेद	कथा	कथा
		तैत्तिरीय	तैत्तिरीय, श्वेतास्वातर
		मैतिरियानी	मैतिरियानी
		हिरान्याकेशी	
		कथाका	
	शुक्ल यजुर वेद	वाजसनेयी	ईशा, बृहद आरण्यक
		काँव शाखा	
अथर्व वेद	दो	शौनक	माण्डुक्य, मुण्डक
		पीपलाद प्रश्न	

108 उपिनषदों की यह सूची मुक्तिक उपनिषद में 1:30-39 में दी गयी हैः-

ईश = शुक्ल यजुर्वेद, मुख्य उपनिषद् केन = सामवेद, मुख्य उपनिषद् कठ उपनिषद्= कृष्ण यजुर्वेद, मुख्य उपनिषद् प्रश्न = अथर्व वेद, मुख्य उपनिषद् मुण्डक = अथर्व वेद, मुख्य उपनिषद् माण्डुक्य = अथर्व वेद, मुख्य उपनिषद् तैतरीय = कृष्ण यजुर्वेद, मुख्य उपनिषद् ऐतरेय = ऋग् वेद, मुख्य उपनिषद् छान्दोग्य= साम वेद, मुख्य

उपनिषद् बृहदारण्यक उपनिषद (10)= शुक्ल यजुर्वेद, मुख्य उपनिषद् ब्रह्म = कृष्ण यजुर्वेद, संन्यास उपिनषद् कैवल्य = कृष्ण यजुर्वेद, शैव उपनिषद् जाबाल (यजुर्वेद) = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् श्वेताश्वतर = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् हंस = शुक्ल यजुर्वेद, योग उपनिषद् आरुणेय = साम वेद, संन्यास उपनिषद् गर्भ = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् नारायण = कृष्ण यजुर्वेद, वैष्णव उपनिषद् परमहंस = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् अमृत-बिन्दु (20) = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् अमृत-नाद = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् अथर्व-शिर = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् अथर्व-शिख = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् मैत्रायिण = साम वेद, सामान्य उपनिषद् कौषीताक = ऋग् वेद, सामान्य उपनिषद् बृहज्जाबाल = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् नृसिंहतापनी= अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् कालाग्निरुद्र = कृष्ण यजुर्वेद, शैव उपनिषद् मैत्रेय = साम वेद, संन्यास उपनिषद् सुबाल (30) = शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् क्षुरिक = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् मान्त्रिक = शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् सर्व-सार = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् निरालम्ब = शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् शुक-रहस्य = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् वज्र-सिचू = साम वेद, सामान्य उपनिषद् तेजो-बिन्दु= कृष्ण यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् नाद-बिन्दु = ऋग् वेद, योग उपनिषद् ध्यानिबन्दु = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् ब्रह्मविद्या (40) = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् योगतत्व= कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् आत्मबोध = ऋग् वेद, सामान्य उपनिषद् परिव्रात् (नारदपरिव्राजक) = अथर्व वेद, संन्यास उपनिषद् त्रि-षिख = शुक्ल यजुर्वेद, योग उपनिषद् सीता = अथर्व वेद, शाक्त उपनिषद् योगचूडामिण = साम वेद, योग उपनिषद् निर्वाण = ऋग् वेद, संन्यास उपनिषद् मण्डलब्राह्मण = शुक्ल यजुर्वेद, उपनिषद् दक्षिणामूर्ति =

कृष्ण यजुर्वेद, शैव उपनिषद् शरभ (50) = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् स्कन्द (त्रपाड्विभूटि) = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् महानारायण = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् अद्वयतारक= शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् रामरहस्य = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् रामतापिण= अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् वासुदेव = साम वेद, वैष्णव उपनिषद् मुद्गल = ऋग् वेद, सामान्य उपनिषद् शाण्डिल्य = अथर्व वेद, योग उपनिषद् पैंगल = शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् भिक्षुक (60) = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् महत् = साम वेद, सामान्य उपनिषद् शारीरक = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् योगिशखा = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् तुरीयातीत= शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् संन्यास = साम वेद, संन्यास उपनिषद् परमहंस-परिव्राजक = अथर्व वेद, संन्यास उपनिषद् अक्षमालिक = ऋग् वेद, शैव पिनषद् अव्यक्त = साम वेद, वैष्णव उपनिषद् एकाक्षर = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् अन्नपूर्ण (70) = अथर्व वेद, शाक्त उपनिषद् सूर्य = अथर्व वेद, सामान्य उपनिषद् अक्षि = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् अध्यात्मा= शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् कुण्डिक = साम वेद, संन्यास उपनिषद् सावित्री = साम वेद, सामान्य उपनिषद् आत्मा = अथर्व वेद, सामान्य उपनिषद् पाशुपत = अथर्व वेद, योग उपनिषद् परब्रह्म = अथर्व वेद, संन्यास उपनिषद् अवधूत = कृष्ण यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् त्रिपुरातपिन (80) = अथर्व वेद, शाक्त उपनिषद् देवि = अथर्व वेद, शाक्त उपनिषद् त्रिपुर = ऋग् वेद, शाक्त उपनिषद् कठरुद्र= कृष्ण यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् भावन = अथर्व वेद, शाक्त उपनिषद् रुद्र-हृदय = कृष्ण यजुर्वेद, शैव उपनिषद् योग-कुण्डिलिन = कृष्ण यजुर्वेद, योग उपनिषद् भस्म = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् रुद्राक्ष = साम वेद, शैव उपनिषद् गणपित = अथर्व वेद, शैव उपनिषद् दर्शन (90) = साम वेद, योग उपनिषद् तारसार = शुक्ल

यजुर्वेद, वैष्णव उपनिषद् महावाक्य = अथर्व वेद, योग उपनिषद् पञ्च-ब्रह्म = कृष्ण यजुर्वेद, शैव उपनिषद् प्राणाग्नि-होत्र = कृष्ण यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद् गोपाल-तपिण = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् कृष्ण = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् याज्ञवल्क्य = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् वराह = कृष्ण यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् शात्यायिन = शुक्ल यजुर्वेद, संन्यास उपनिषद् हयग्रीव (100) = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् दत्तात्रेय= अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् गारुड = अथर्व वेद, वैष्णव उपनिषद् किल-सण्टारण = कृष्ण यजुर्वेद, वैष्णव उपनिषद् जाबाल (सामवेद) = साम वेद, शैव उपनिषद् सौभाग्य = ऋग् वेद, शाक्त उपनिषद् सरस्वती-रहस्य= कृष्ण यजुर्वेद, शाक्त उपनिषद् बृह्वच = ऋग् वेद, शाक्त उपनिषद् मुक्तिक (108) = शुक्ल यजुर्वेद, सामान्य उपनिषद्।

ऋषि याग्य्वाल्क्कि, उद्दल्का, ऐतिरिय, पिप्लाद, सनत कुमार, श्वेतकेतु, शांडिल्य, मनु, महर्षि नारद ने उप्निशादाक्य ज्ञान बाँटा है। जीव की विचार-क्षमता का आधार उपनिषद है। जो ज्ञान, विचार, सोच उपनिषद में है वह अन्य कहीं हो ही नहीं सकता। सभ्यता के आरंभिक दिनों में लिखा गया ग्रंथ विश्व के प्रत्येक देश, जाति, धर्म में उत्सुकता जगाता है।

उपनिषद के कुछ महत्वपूर्ण कथ्य उद्धृत हैं :-

ॐ असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय।
मृत्योर्मा अमृतं गमय। ॐ शांति शांति शांतिः॥
अतिथि देवो भवः
सत्यमेव जयते

बृहदारण्यक उपनिषद् के अनुसार मेघगर्जना रूपी दैवी वाक् कामी, क्रोधी और लोभी स्वभाव वालों के लिए एक ही संदेश देती है। कामी व्यक्ति के लिए दमन का सन्देश है क्योंकि उसमें इन्द्रिय लोलुपता होती

है। क्रोधी और उद्दण्ड व्यक्ति के लिए दया का सन्देश है क्योंकि वह क्रूर होता है। लोभी व्यक्ति के लिए दान का सन्देश है क्योंकि दान करने से धनलोलुपता नहीं रह जाती। केन उपनिषद् में देवी-देवताओं तक को अभिमान न करने की चेतावनी दी गयी है क्योंकि उनकी शक्ति और उनका तेज घट जाने की सम्भावना होती है। वस्तुतः ब्रह्म की शक्ति और ब्रह्म का तेज ही है। कठ उपनिषद् के अनुसार इन्द्रियों की अपेक्षा उनके विषय श्रेष्ठ हैं। विषयों से मन उत्कृष्ट है, मन से बुद्धि श्रेष्ठ है और बुद्धि से महान् आत्मा उत्कृष्ट है। आत्मा से मूल प्रकृति (अव्यक्त) श्रेष्ठ है और अव्यक्त से भी परब्रह्म श्रेष्ठ है। परब्रह्म से परे कुछ भी नहीं है, वही परम गति है। सम्पूर्ण भूतों में छिपा हुआ यह आत्मा प्रकाशवान् नहीं होता। यह सूक्ष्मदर्शी पुरुषों द्वारा अपनी तीव्र और सूक्ष्मबुद्धि से ही देखा जाता है। विवेकी पुरुष वाक् इन्द्रिय (वाणी) का मन में उपसंहार करे, मन का प्रकाशस्वरूप बुद्धि में लय करे, बुद्धि को महत्व में लीन करे और महान् आत्मा को मुख्य आत्मा में नियुक्त करे। अरे अविद्याग्रस्त लोगों! उठो, जागो और श्रेष्ठ पुरुषों के समीप जाकर ज्ञान प्राप्त करो। जिस प्रकार छूरे की धार तीक्ष्ण एवं दुष्कर होती है, तत्वज्ञानी लोग उस मार्ग को वैसा ही दुर्गम बतलाते हैं।

उत्तिष्ठ जाग्रत प्राप्य वरान्नि बोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया,
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।

वेदों के अन्तिम भाग या उच्चतम दर्शन को वेदान्त या उपनिषद् कहा जाता है। अब वेदान्त शब्द का प्रयोग उस विशेष दर्शन के लिए भी होता है जो उपनिषदों पर आधारित है। शंकर 'उपनिषद्' शब्द की व्युत्पत्ति 'सद्' धातु से मानते हैं, जिसका अर्थ है मुक्त करना, पहुँचना या नष्ट करना। यह एक विशेष्य है जिसमें 'उप' और 'नि' उपसर्ग और क्विप् प्रत्यय लगे हैं। इसके अनुसार उपनिषद् का अर्थ होता है ब्रह्मज्ञान,

जिसके द्वारा अज्ञान से मुक्ति मिलती है। जिन ग्रन्थों में ब्रह्मज्ञान की चर्चा रहती है, वे उपनिषद् कहलाते हैं। उपनिषदों में आध्यात्मिक अन्तर्दृष्टि एवं दार्शनिक तर्क प्रणाली दोनों के दर्शन होते हैं। श्वेताश्वतरोपनिषद् के अनुसार परमेश्वर वेदों के गुह्य भाग उपनिषदों में निहित है (तद्वेद गुह्योपनिषत्सु गूढ़ं)। उपनिषद् ऐसा साहित्य है जो आदिकाल से विकसित हो रहा है। भारतीय परम्परा में उपनिषदों की संख्या एक सौ आठ मानी गयी है। शंकराचार्य ने ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहद् आरण्यक और श्वेताश्वतर - इन ग्यारह उपनिषदों का भाष्य किया है और ये ही सर्वसुलभ हैं।

वेद का एक भाग होने से उपनिषदों का सम्बन्ध श्रुति या प्रकट हुए साहित्य से है। ये सनातन कालातीत हैं। अन्तःप्रेरित ऋषि यह घोषणा करते हैं कि जिस ज्ञान को वे प्रदान कर रहे हैं, उसका उन्होंने स्वयं आविष्कार नहीं किया है। वह उनके आगे बिना उनके प्रयत्न के प्रकट हुआ है (पुरुष प्रयत्नं बिना प्रकटीभूत)। उपनिषद् प्रतीक शैली का प्रयोग करते हुए, दिव्य दर्शन को हमारे ऊपर छोड़ा गया ईश्वर का निश्वास कहते हैं (मुण्डक 2-1-6)। श्वेताश्वतर उपनिषद् कहती है कि ऋषि श्वेताश्वतर ने अपने तप के प्रभाव और ईश्वर की कृपा से सत्य का दर्शन किया। उपनिषदें व्यवस्थित चिन्तन से अधिक आत्मिक आलोक की साधन हैं। इनमें हमें आध्यात्मिक जीवन का वर्णन मिलता है, जो भूत, वर्तमान और भविष्य में सदा एक सा है। ब्रह्मसूत्र उपनिषदों की शिक्षा का संक्षिप्त सार है। वेदान्त के महान आचार्यों ने इस ग्रन्थ पर भाष्य रचकर उनसे अपने-अपने विशिष्ट मत विकसित किये हैं।

19 उपनिषद् शुक्ल यजुर्वेद से हैं और उनका शान्तिपाठ पूर्णमदः से आरम्भ होता है।

32 उपिनषद कृष्ण यजुर्वेद से हैं और उनका शान्तिपाठ सहनाववतु से आरम्भ होता है।

16 उपनिषद् सामवेद से हैं और उनका शान्तिपाठ आप्यायन्तु से आरम्भ होता है।

31 उपनिषद् अथर्ववेद से हैं और उनका शान्तिपाठ भद्रं कर्णेभिः से आरम्भ होता है।

10 उपनिषद् ऋग्वेद से हैं और उनका शान्तिपाठ वण्मे मनिस से आरम्भ होता है।

जल में स्पंदन
करता तरंगों का सृजन
आत्मा होती सरिता सम
निर्मल मृदु मृदु अनवरत
सरिता का मिलन-समर्पण सागर से
अंतिम बंध है,
ज्यूँ अबाध जीवन मलय की गति
उपवन की सुरभित सुगंध है।
उर तो शांत जलाशय
क्यों है तरंगित
कामना की भावना से है अस्थिर
आशा की कौन सी अभिलाषा
कर गयी आत्म-मंथन से परिचित
अंतर्मन का आत्मा से मिलन।
समकालीन जीवन व्यवस्था है
मन एवं तन नहीं आधार अस्तित्व के
अस्तित्व तो अवस्था है; स्थिर चेतन आत्मा की
शक्ति-रूप, ज्ञान-रूप, आनंद-रूप आत्मा
अहैतुक, भौतिक गुणों से परे होती आत्मा,
तन के रथ पर शोभित

चंचल मन को संचालित करती रथवान सी आत्मा।
आत्मा होती अंतस प्रकाश मानव की
चिर परिचित प्राणों के स्पंदन की
अपने ही सुख से चिर चंचल मन की
शांत उर सरोवर की विचलित आत्मा,
परमात्मा-रूपी सागर में विलय को आतुर
जीवन सरिता आत्मा
मनुज है असत्य
मानव अस्तित्व है ब्रह्म
ब्रह्म-ज्योति से मिलन को व्याकुल आत्मा।

—सुरेश चौधरी 'इंदु'
(स्त्रोत : निज शोध एवं विभिन्न गूगल स्थित लेख)

कठोपनिषद

यजुर्वेद

कठोपनिषद - परिचय

कठोपनिषद यजुर्वेद से संबद्ध एक अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रामाणिक उपनिषद है। यह उपनिषद भारतीय दर्शन में आत्मा, मृत्यु और मोक्ष के प्रश्नों पर सबसे गंभीर और सुसंगठित चिंतन प्रस्तुत करता है। उपनिषदिक साहित्य में इसका स्थान इसलिए विशिष्ट है क्योंकि इसमें दार्शनिक गहराई के साथ-साथ कथात्मक स्पष्टता और काव्यात्मक सौंदर्य का दुर्लभ समन्वय मिलता है।

1. वेद-संबद्धता (शुद्ध तथ्य)

कठोपनिषद का वेद-संबंध इस प्रकार है–

- **वेद** : यजुर्वेद
- **शाखा** : कठ (कठ शाखा)
- इसी से इसका नाम **कठोपनिषद** पड़ा

यह तथ्य शंकराचार्य, माध्वाचार्य तथा सभी प्रामाणिक परंपराओं में निर्विवाद रूप से स्वीकृत है।

2. संरचना (अत्यंत महत्वपूर्ण संशोधन)

कठोपनिषद की संरचना इस प्रकार है–

- **कुल 2 अध्याय (अध्याय प्रथम और द्वितीय)**
- **प्रत्येक अध्याय में 3-3 वल्लियाँ**
- इस प्रकार **कुल 6 वल्लियाँ**

3. कथात्मक पृष्ठभूमि

कठोपनिषद का आधार प्रसिद्ध **नचिकेता-यम संवाद** है।

बालक नचिकेता अपने पिता की असावधानी से यमलोक पहुँचता है। यमराज की अनुपस्थिति में तीन दिन प्रतीक्षा करने पर यम उसे **तीन वरदान** देते हैं।

- पहला वरदान – पिता की शांति
- दूसरा वरदान – अग्नि-विद्या
- **तीसरा वरदान** – मृत्यु के बाद आत्मा के अस्तित्व का प्रश्न

यहीं से कठोपनिषद का दार्शनिक चरम आरंभ होता है।

4. मुख्य दार्शनिक विषय

कठोपनिषद जिन केंद्रीय विषयों को प्रतिपादित करता है–

- आत्मा की **अमरता**
- शरीर और आत्मा का भेद
- मृत्यु का तात्त्विक स्वरूप
- **श्रेय और प्रेय** का विवेक
- इंद्रिय-निग्रह और आत्मसंयम
- ब्रह्मज्ञान द्वारा मोक्ष

यह उपनिषद स्पष्ट करता है कि सत्य का मार्ग कठिन है, पर वही कल्याणकारी है।

5. श्रेय-प्रेय सिद्धांत

कठोपनिषद का सर्वाधिक व्यावहारिक दर्शन–

- **प्रेय** : तत्काल सुख देने वाला मार्ग
- **श्रेय** : दीर्घकालीन कल्याण का मार्ग

उपनिषद कहता है कि विवेकी पुरुष प्रेय को त्यागकर श्रेय को ग्रहण करता है।

6. रथ-उपमा

कठोपनिषद की प्रसिद्ध **रथ-उपमा** में–

- आत्मा – रथी
- शरीर – रथ
- बुद्धि – सारथी

- मन – लगाम
- इंद्रियाँ – अश्व

यह योग और वेदान्त दोनों की आधारभूत शिक्षा है।

7. आत्मा का स्वरूप

उपनिषद आत्मा को स्पष्ट रूप से कहता है–

न जायते म्रियते वा कदाचित्

आत्मा न जन्म लेती है, न मरती है; वह नित्य, अविनाशी और ब्रह्मस्वरूप है।

8. भाषा और शैली

कठोपनिषद की भाषा–

- काव्यात्मक
- संवादात्मक
- प्रतीकात्मक
- दार्शनिक

है। यही कारण है कि यह उपनिषद सामान्य पाठक और विद्वान– दोनों को समान रूप से आकर्षित करता है।

उपसंहार

कठोपनिषद यजुर्वेद की कठ शाखा का वह अमूल्य उपनिषद है जो जीवन और मृत्यु के बीच खड़े होकर आत्मा की शाश्वत सत्ता की घोषणा करता है। इसकी संरचना, दर्शन और प्रतीकात्मकता इसे भारतीय दार्शनिक परंपरा का एक शिखर-ग्रंथ बनाती है।

प्रथम अध्याय

इस अध्याय में नचिकेता अपने पिता द्वारा प्रताड़ित किये जाने पर यम के यहाँ पहुँचता है और यम की अनुपस्थिति में तीन दिन तक भूखा-प्यासा यम के द्वार पर बैठा रहता है। तीन दिन बाद जब यम लौटकर आते हैं, तब उनकी पत्नी उन्हें ब्राह्मण बालक अतिथि के विषय में बताती है। यमराज बालक के पास पहुँचकर अपनी अनुपस्थिति के लिए नचिकेता से क्षमा माँगते हैं और उसे इसके लिए तीन वरदान देने की बात कहते हैं। वे उसे उचित सम्मान देकर व भोजन आदि कराके भी सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करते हैं। तदुपरान्त नचिकेता द्वारा वरदान माँगने पर 'अध्यात्म' के विषय में उसकी जिज्ञासा शान्त करते हैं।

प्रथमवल्ली

कथा इस प्रकार है कि किसी समय वाजश्रवा ऋषि के पुत्र वस उद्दालक मुनि ने विश्वजीत यज्ञ करके अपना सम्पूर्ण धन और गौएं दान कर दीं। जिस समय ऋत्विजों द्वारा दक्षिणा में प्राप्त वे गौएं ले जाई जा रही थीं, तब उन्हें देखकर वाजश्रवस उद्दालक मुनि का पुत्र नचिकेता सोच में पड़ गया; क्योंकि वे गौएं अत्यधिक जर्जर हो चुकी थीं। वे न तो दूध देने योग्य थीं, न प्रजनन के लिए उपयुक्त थीं। उसने सोचा कि इस प्रकार की गौओं को दान करना दूसरों पर भार लादना है। इससे तो पाप ही लगेगा। ऐसा विचार कर नचिकेता ने अपने पिता से कहा-'हे तात! इससे अच्छा तो था कि आप मुझे ही दान कर देते।' बार-बार ऐसा कहने पर पिता ने क्रोधित होकर कह दिया-'मैं तुझे मृत्यु को देता हूँ।' पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए नचिकेता यम के द्वार पर जा पहुँचा और तीन दिन तक भूखा-प्यासा पड़ा रहा। जब यम ने उसे वरदान देने की बात कही, तो उसने पहला वरदान माँगा।

पहला वरदान

'हे मृत्युदेव! जब मैं आपके पास से लौटकर घर जाऊँ, तो मेरे पिता क्रोध छोड़, शान्त चित्त होकर, मुझसे प्रेमपूर्वक व्यवहार करें और अपनी शेष आयु में उन्हें कोई चिन्ता न सताये तथा वे सुख से सो सकें।' यमराज ने 'तथास्तु' अर्थात 'ऐसा ही हो' कहकर पहला वरदान दिया।

दूसरा वरदान

'हे मृत्युदेव! आप मुझे स्वर्ग के साधनभूत उस 'अग्निज्ञान' को प्रदान करें, जिसके द्वारा स्वर्गलोक को प्राप्त हुए पुरुष अमरत्व को प्राप्त करते हैं।' यमराज ने नचिकेता को उपदेश देते हुए कहा-'हे नचिकेता! तुम इस 'अग्निविद्या' को एकाग्र मन से सुनो। स्वर्गलोक को प्राप्त कराने वाली यह विद्या अत्यन्त गोपनीय है।' तदुपरान्त यमराज ने नचिकेता को समझाया कि ऐसा यज्ञ करने के लिए कितनी ईंटों की वेदी बनानी चाहिए और यज्ञ किस विधि से किया जाये तथा कौन-कौन से मन्त्र उसमें बोले जायें। अन्त में नचिकेता की परीक्षा लेने के लिए यमराज ने उससे अपने द्वारा बताये यज्ञ का विवरण पूछा, तो बालक नचिकेता ने अक्षरशः उस विधि को दोहरा दिया। उसे सुनकर यमराज बालक की स्मरणशक्ति और प्रतिभा को देखकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा-'हे नचिकेता! तेरे माँगे गये तीन वरदानों के अतिरिक्त मैं तुम्हें एक वरदान अपनी ओर से यह देता हूँ कि मेरे द्वारा कही गयी यह 'अग्निविद्या' आज से तुम्हारे नाम से जानी जायेगी। तुम इस अनेक रूपों वाली, ज्ञान-तत्वमयी माला को स्वीकर करो।'

नचिकेता को दिव्य 'अग्निविद्या' प्राप्त हुई। इसलिए उस विद्या का नाम 'नचिकेताग्नि' (लिप्त न होने वाले की विद्या) पड़ा। इस प्रकार की त्रिविध 'नचिकेता' विद्या का ज्ञाता, तीन सन्धियों को प्राप्त कर, तीन कर्म सम्पन्न करके जन्म-मृत्यु से पार हो जाता है और परम शान्ति

प्राप्त करता है। आचार्यों ने नचिकेता विद्या को 'प्राप्ति', 'अध्यायन' और 'अनुष्ठान' तीन विधियों से युक्त कहा है। साधक को इन तीनों के साथ आत्म-चेतना की सन्धि करनी पड़ती है, अर्थात स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर को इस विद्या से अनुप्राणित करना पड़ता है। इस प्रक्रिया को 'त्रिसन्धि' प्राप्ति कहा जाता है। कुछ आचार्य माता-पिता और गुरु से युक्त होने को त्रिसन्धि कहते हैं। इन सभी को दिव्याग्नि के अनुरूप ढालते हुए साधक जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है। अब उसने यमराज से तीसरा वर माँगा।

तीसरा वरदान

'हे मृत्युदेव! मनुष्य के मृत हो जाने पर आत्मा का अस्तित्व रहता है, ऐसा ज्ञानियों का कथन है, परन्तु कुछ विद्वानों की मान्यता है कि मृत्यु के बाद आत्मा का अस्तित्व नहीं रहता। आप मुझे इस सन्देह से मुक्त करके बतायें कि मृत्यु के पश्चात आत्मा का क्या होता है?' नचिकेता के तीसरे वरदान को सुनकर यमराज ने उसे समझाया कि यह विषय अत्यन्त गूढ़ हैं इसके बदले वे उसे समस्त विश्व की सम्पदा और साम्राज्य तक दे सकते हैं, किन्तु वह यह न पूछे कि मृत्यु के बाद आत्मा का क्या होता है; क्योंकि इसे जानना और समझना अत्यन्त अगम्य है, परन्तु नचिकेता किसी भी रूप में यमराज के प्रलोभन में नहीं आया और अपने माँगे हुए वरदान पर ही अड़ा रहा।

<u>शांति पाठ</u>

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।
हे स्वामी!
आप ही जगतगुरु
मैं गुरु सह करूँ नमन
मैं शिष्य अज्ञानी
रक्षा करो, पोषण करो,
ज्ञान का दो भण्डार
शक्ति दो
तेजोमय हो निज संसार
विजयी रहें सदा बुद्धि ज्ञान के चयन में,
ताप त्रय का हो विनाश
प्रेम ही प्रेम हों नयन में
मेरे गुरु के संग रहे सदा पोषण में॥

प्रथमाध्याये प्रथमा वल्ली

श्लोकः1-4

ॐ अशन् ह वै वाजश्रवसः सर्ववेदसं ददौ।
तस्य ह नचिकेता नाम पुत्र आस ॥1॥
तं ह कुमारं सन्तं दक्षिणासु नीयमानसु श्रद्धा आविवेश सोऽमन्यत ॥2॥
पीतोदका जग्धतृणा दुग्धदोहा निरिन्द्रियाः।
अनन्दा नाम ते लोकास्तान् स गच्छति ता ददत् ॥3॥
स होवाच पितरं तत कस्मै मां दास्यतीति।
द्वितीयं तृतीयं तं होवाच मृत्यवे त्वा ददामीति ॥4॥

हे नाथ!
उपनिषदों में श्रेष्ठ ॐकार है,
वाजश्रवा मुनि के पुत्र नचिकेता था दानवीर महान
वेदों का था प्रज्ञ
विश्वजीत था किया यज्ञ।
जीर्ण गौ दान देख
विचलित था
बाल नचिकेता।
व्यर्थ वह दान होता
जिसका न कोई उपयोग
पिता मेरे क्यों प्रसन्न हो रहे
दे जीर्ण गौ विनियोग।
मैं पुत्र अति प्रिय तात का
क्यों दे रहे किसे दे रहे
प्रश्न बारम्बार उठ रहा
क्रोधित ऋषि ने

नचिकेता को मृत्यु को दे दिया
प्रश्न व्यग्र कर रहा
नाथ बतलाएं जरा
नचिकेता ने ऐसा क्या किया
क्यों किया ॥

<u>श्लोकः5-8</u>

बहुनामेमि प्रथमों बहुनामेमि मध्यमः ।
किं स्विद्यमस्य कर्तव्यं यन्मयाद्य करिष्यति ॥5 ॥
अनुपश्य यथा पूर्वे प्रतिपश्य तथापरे ।
सस्यमिव मर्त्यः पच्यते सस्यमिवाजायते पुनः ॥6 ॥
वैश्वानरः प्रविशत्यतिथिर्ब्राह्मणों गृहान् ।
तस्यैतां शान्ति कुर्वन्ति हर वैवस्वतोदकम् ॥7 ॥
आशा प्रतीक्षे संगतं सूनृतां च इष्टापूर्ते पुत्रपशूंश्च सर्वान् ।
एतद् वृङ्क्ते पुरुषस्याल्पमेधसो यस्यानश्नन् वसति
ब्राह्मणो गृहे ॥8 ॥

हे प्रभु!
वाजश्रवा ऋषि ने क्यों दिया
यम को पुत्र नचिकेता
क्या है मर्म बतलाएँ
पुत्रों की होती तीन श्रेणी
श्रेष्ठ माध्यम अधम
अधम तो नहीं था नचिकेता समझाएँ
किये जो भी आचरण ऋषि पूर्वजों ने
बताएँ हमें
श्रेष्ठ पुत्रों के धर्म को आप समझाएँ हमें
अन्न सम वृत्ति प्राणों की होती
जन्म मरण तो विधान है

जब नचिकेता पहुँचे यमपुरी
क्यों उनको रोका गया दिन तीन
वे थे विप्र रूप अतिथि
भानु-पुत्र ने किया आतिथ्य
धर्मराज ने पाद-प्रक्षालन
नम्र हो सूत-आदित्य।
कैसा आतिथ्य
भोजन बिन रहे जहाँ विप्र
दान-पुण्य सब कर्मों का फल हुआ छिप्र
श्री हीन् होते वे,
जिनके घर रहते भूखे आगत
जो न कर सके उचित स्वागत॥

श्लोक:9-11

तिस्त्रो रात्रीर्यदवात्सीर्गृहे मे अनश्नन् ब्रह्मन्नतिथिर्नमस्यः।
नमस्ते अस्तु ब्रह्मन् स्वस्ति में अस्तु तस्मात् प्रति
त्रीन् बरान् वृणीष्व॥9॥
शान्तसकल्पः सुमना यथा स्याद्वीतमन्युर्गौर्तमों माभि मृत्यो।
त्वत्प्रसृष्टं माभिवदेत्प्रतीत एतत्त्रयाणां प्रथमं वरं वृणे॥10॥
यथा पुरस्ताद् भविता प्रतीत औद्दालकिरारुणिर्मत्प्रसृष्टः।
सुखं रात्रीः शयिता वीतमन्युस्त्वां
ददृशिवान्मृत्युमुखात्प्रमुक्तम्॥11॥

हे नाथ!
यम ने क्यों क्षमा माँगी विप्र बालक से कह
आप अतिथि मेरे, आप प्रणम्य
क्षमा करें
कष्ट दिया आपको रोक दिन तीन

तीन वर लीजिये निसंकोच
करें मुझे कष्टविहीन।
नचिकेता ने फिर प्रभु कैसे माँगे वर तीन
प्रथम वर आप दीजिये,
लौट यहाँ से जाऊँ जब,
पिता मेरे क्रोध-रहित, शांतचित्त, मुदित
आनंदित हो मुझसे
स्नेह से करें स्वीकार,
दे प्रभु यह अधिकार।
स्वीकार कर आपने यह
वर प्रथम
हर्षित मुझे किया
आपने क्रोध उद्वेग शांत किया
पितृ मेरे अब रह सकेंगे चैन से
न अतिरेक से, किन्तु विवेक से॥

<u>**श्लोकः12-13**</u>

स्वर्गे लोक न भयं किञ्चनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति।
उभे तीर्त्वाशनायापिपासे शेकातिगो मोदते स्वर्गलोके॥12॥
स त्वमग्नि स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यों प्रब्रूहि त्वं श्रद्दधानाय मह्यम।
स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद् द्वितीयेन वृणे वरेण॥13॥

हे स्वामी!
स्वर्गलोक सुख की खान
न होते भय से भयभीत,
न डर जरावस्था का,
यह शारीरिक कष्ट विहीन लोक

न यह मृत्यु लोक।
हे मृत्यु देव,
आप अग्नि के ज्ञाता
स्वर्ग अग्नि बिन नहीं आता
मैं नचिकेता अग्नि एवं आप में
रखता पूर्ण श्रद्धा
वर दूसरा दीजिये
ज्ञान अग्नि का मुझे दीजिये॥

<u>श्लोकः14-16</u>

प्र ते ब्रवीमि तदु मे निवोध स्वर्ग्यमग्निं नचिकेतः प्रजानन्।
अनन्तलोकाप्तिमथो प्रतिष्ठां विद्धि त्वमेतं निहितं गुहायाम्॥14॥
लोकादिमग्निं तमुवाच तस्मै या इष्टका यावतीर्वा यथा वा।
स चापि तत्प्रत्यवदद्यथोक्तमथास्य मृत्युः पुनरेवाह तुष्टः॥15॥
तमब्रवीत प्रीयमाणो महात्मा वरं तवेहाद्य ददामि भूयः।
तवैव नामा भवितायमग्निः सृक्ङां चेमामनेकरुपां गृहाण॥16॥

हे देव!
उपकार आपने किया,
स्वीकार मेरी याचना द्वितीय वर की
आप कह रहे आप विधिवत विज्ञ
अग्नि विद्या से,
विद्या यह अनंत, अविनाशी
बुद्धि रूपी गुफा में यह मिले॥
देव बतलाता हूँ
जो आपने सिखलाया मुझे
इतनी ईंटें अग्नि कुंड शुचि को अभीष्ट हैं,
स्वर्ग कारण स्वरूप अग्नि उपदिष्ट है॥

हे वत्स!
धर्मराज ने चकित हो कहा
बुद्धि तुम्हारी अप्रतिम
एक वर और देता हूँ
अग्नि विद्या अब से
तुम्हारे नाम से जानी जाएगी
रतनमाल देव सिद्धि को यह विविध रूपा
सिद्धि मानी जाएगी॥

<u>श्लोकः17-18</u>

त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धिं त्रिकर्मकृत् तरति जन्ममृत्यु।
ब्रह्मजज्ञ। देवमीड्यं विदित्वा निचाय्येमां शानितमत्यन्तमेति॥17॥
त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा य एवं विद्वांश्चिनुते नाचिकेतम्।
स मृत्यृपाशानृ पुरतः प्रणोद्य शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके॥18॥

हे अग्निदेव!
अनुष्ठान तीन बार करते जो आपका,
विधिवत लिखित शास्त्रों में जैसा
तीनो वेदों, ऋग, साम, यजु का तत्व ज्ञान
दान यज्ञ का विधान
चयनित निष्काम भाव से
जन्म चक्र से मुक्त हो
भ्रान्ति से विमुक्त हो
शान्ति प्रदान करें।
कितनी ईंटों से कुंड निर्माण हो
किस विधि से विद्या प्रमाण हो
मर्म अग्नि विद्या का जानते नचिकेता
अनुष्ठान तीन बार हो

तोड़ कर जन्म मृत्यु पाश
स्वर्ग सुख हो मेरे पास॥

श्लोकः19-20

एष तेऽग्निर्नचिकेतः स्वर्ग्यो यमवृणीथा द्वितीयेन वरेण।
एतमग्निं तवैव प्रवक्ष्यन्ति जनासस्तृतीयं वरं नचिकेतो वृष्णीष्व ॥19॥
येयं प्रेते विचिकित्सा मनुष्येऽस्तीत्येके नायमस्तीति चैके।
एतद्विद्यामनुशिष्टस्त्वयाहं वराणामेष वरस्तृतीयः ॥20॥

हे देव!
आपने नचिकेता नाम से अग्नि विद्या को
दिया नया नाम है
अग्नि विद्या स्वर्ग दायिनी विख्यात है
तीसरा वर माँगने को अब नचिकेता तत्पर है,
वर तीसरा देता प्रज्ञा बुद्धि अवसर है।
नचिकेता माँग रहा
नाथ! वर तृतीय दीजिये मुझे
आत्म तत्व के ज्ञान से सींचिये मुझे
उपरांत मृत्यु के आत्मा रहती कि नहीं?
अस्तित्व उसका होता कि नहीं?
अब तक संशय यह भारी
दूर आप कीजिये
मर्म इसका धर्मराज आप पूर्ण कीजिये॥

श्लोकः21-22

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा न हि सुवेज्ञेयमणुरेष धर्मः।
अन्यं वरं नचिकेतो वृणीष्व मा मोपरोत्सीरति मा सृजैनम् ॥21॥
देवैरत्रापि विचिकित्सितं किल त्वं च मृत्यों यत्र सुविज्ञेममात्थ।
वक्ता चास्य त्वादृगन्यों न लभ्यो नान्यो वरस्तुल्य एतस्य कश्चित् ॥22॥

हे नाथ यमदेव!
अति सूक्ष्म आत्म तत्व का ज्ञान दीजिये,
अतिशय न्यून ज्ञात है जो
सहज ग्राह्य देवों को
कैसे कह दिया
आपने माँगूं दूसरा अन्य वर,
आप तो प्रतिज्ञाबद्ध हैं,
देवों को भी दुर्लभ मर्म आप दीजिये।
देवों को भी अज्ञेय विषय गूढ़ है
आप सा ज्ञाता गुरु हो
तो सब ज्ञेय है
अतः मैं मूढ़ता में
कोई अन्य वर ले सकता नहीं
गूढ़ता को जान
ज्ञान मुझे दीजिये,
नमन मेरा स्वीकार कीजिये॥

श्लोकः23-25

शतायुषः पुत्रपौत्रान् वृणीष्व बहून् पशून् हस्तिहिरण्यमश्वान्।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि॥23॥
एतत्तुल्यं यदि मन्यसे वरं वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च।
महाभूभौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानां त्वा कामभाजं करोमि॥24॥
ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान् कामांश्छन्दतः प्रार्थयस्व।
इमा रामा : सरथा : सतूर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः।
आभिर्मत्प्रत्ताभि : परिचारयस्व् नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षी॥25॥

हे धर्मराज!
नचिकेता को क्यों बहला रहे
सूत, पौत्र, गौवें, स्वर्ण, हाथी, अश्व या साम्राज्य का

प्रलोभन दे मना रहे,
आत्मतत्व का मर्म है दुर्लभ
इस विषय से दूर क्यों जा रहे।
नाथ न चाहिए
धन राज्य वैभव दीर्घ जीवन
यह सब आत्म विषयक सम हो नहीं सकते
न चाह युगों तक जीने की
इच्छित भोगों को पीने की।
दीजिये ज्ञान मृत्युपरांत आत्मा के मर्म का
क्या करूँगा सुन्दर रमणी के सम्भोग का,
भूलोक के दुर्लभ भोग का
विश्व के वैभव
सहज उपलब्ध सेवा
निरर्थक हैं सभी।

श्लोकः26-27

श्वो भावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत् सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः।
अपि सर्वम् जीवितमल्पेमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ॥26॥
न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत् त्वा।
जीविष्यामो यावदीशिष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव ॥27॥

हे कृपानिधि!
पुत्र पौत्र गौ अश्व गज साम्राज्य
सब के सब हैं नैराश्य
सब ही एक दिन होने समाप्त हैं
प्राण आयु अप्सरा रथ विपुल राज्य भी
इस क्षणभंगुर संसार में
सब कुछ चुकेंगे यहीं
क्यों मैं मोहित होऊँ

इस असार में?
धन अर्थ
सब व्यर्थ
न करते तृप्त
प्रलोभन समुच्चय
आकर्षित न करें मुझे
धन आयु यथेष्ट हैं
आपकी कृपा श्रेष्ठ है
वर तीसरा आत्म ज्ञान का दीजिये मुझे॥

<u>श्लोकः28-29</u>

अजीर्यताममृतानामुपेत्य जीर्यन् मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन्।
अभिध्यायन् वर्णरतिप्रमोदानदीर्घे जीविते को रमेत॥28॥
यस्मिन्निदं विचिकित्सन्ति मृत्यो यत्साम्पराये महति ब्रूहि नस्तत्।
योऽयं वरो गूढमनुप्रविष्टो नान्यं तस्मान्नचिकेता वृणीते॥29॥

हे यमराज!
आत्मज्ञान ही धर्म मर्म गूढ़ है,
सुविज्ञ मनुज जानते
प्राण नश्वर है,
नारी सौन्दर्य सुख, धन, सब भोग
जीवन के त्रास है
आप तो मृत्यु विहीन हो
नाथ गूढ़ ज्ञान दीजिये,
बताइये
मरणोपरांत आत्मा का अस्तित्व क्या है
आत्म ज्ञान का सत्य क्या है,
न दें प्रलोभन मुझे
बस आत्म ज्ञान ही दीजिये॥

प्रथम अध्याय द्वितीय वल्ली

श्लोकः1-2

अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ॥1॥
श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीरः।
श्रेयो हि धीरोऽभिप्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते ॥2॥

हे देव!
प्रेम साधना भिन्न होती,
कल्याण साधना से,
भिन्न-भिन्न फल देती दोनों अवस्थाएं
कल्याणकारी अलौकिक सुख
संसार से परे श्रेयस्कर होता,
प्रेम सांसारिक दुःख का
अति भावकर होता।
धीर ज्ञानी होते जो
चिंतन करते प्रिय एवं श्रेयस्कर दोनों का
साधना करते श्रेयस्कर का समझ अंतर दोनों का
अज्ञ अल्पज्ञ मनुज रहते योगक्षेम में लीन
तत्व ज्ञानी विवेकी रहते प्रभु में तल्लीन॥

श्लोकः3-4

स त्वं प्रियान् प्रियरूपांश्च कामानभिध्यायन्नचिकेतोऽत्यस्त्राक्षीः।
नैतां सृङकां वित्तमयीमवाप्तो यस्यां मज्जन्ति बहवो मनुष्याः ॥3॥
दूरमेते विपरीत विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता।
विद्याभीप्सितं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त ॥4॥

हे नाथ!

आपकी कृपा से
लौकिक अलौकिक दिव्य प्रलोभन
न कर सके विचलित मुझे
आपने मुझे तत्व का अधिकारी बताया
धन लोभ से विमुक्त
निस्पृह शुचितामय भक्त नियुक्त करो मुझे।
प्रभु मुझे विद्या का अभिलाषी जान
मिर्मंषित तितिक्षामय विवेक आत्मज्ञान प्रदान करें
विद्या एवं अविद्या
दो साधन प्रमुख
अविद्या आती भोगों से
विद्या प्रेरित ज्ञान से
नचिकेता को प्रभु
दीजिये ज्ञान॥

<u>श्लोकः5-6</u>

अविद्यायामन्तरे वर्तमानः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः।
दन्द्रभ्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥5॥
न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढ।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे।।6।।

हे स्वामी!
अविद्या के अंतर को जान
वर्तमान में स्वयं को धीर मान
पंडित कहे जो साभिमान
मूढ़ भोगी होते जो
रहते विभिन्न योनियों में वे
ज्यूँ अंधे को मार्ग अँधा कहता

वह बहु योनियों में भटकता रहता
लक्ष्य कदापि नहीं मिलता।
मैं नहीं चाहता
पुनः पुनः जन्म मरण चक्र में फँसूं
उनकी तरह; जो
भौतिक प्रमादी मूढ़ हैं
धन के मद में गूढ़ हैं
चिंता नहीं जिन्हें परलोक की
क्षणिक सुख ही शाश्वत जिनको
भ्रमित रहते
करते आश्वस्त उनको॥

__श्लोकः7-8__

श्रवणायापि बहुरभिर्यो न लक्ष्यः श्रृण्वन्तोपि बहवो यं न विद्युः।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोस्य लब्धाश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥7॥
न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति अणीयान् ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात् ॥8॥

हे देव!
कष्ट हारी है होता
आत्म-तत्व का श्रवण मात्र,
अधिकांश तो नहीं सुयोग पात्र,
कदाचित सुन भी लें
ग्रहण नहीं कर पाते,
दुर्लभ है मनुज जो
श्रवण भी करे ग्रहण भी करे,
है आत्म-तत्व ज्ञान
परम अनुष्ठान।

आत्म-तत्व अति सूक्ष्म
कहें तो सूक्ष्म से भी सूक्ष्म
यह तर्क-कुतर्क से दूर
ज्ञानियों को उपलब्ध है
जब तक प्रकृति है
आत्म-तत्व का ज्ञान
ज्ञानी को मिलता
अज्ञानी तो बिलखता॥

<u>श्लोकः9-10</u>

नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्तान्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ।
यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि त्वादृङ् नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा॥9॥
जानाज़्यहं शेवधिरित्यनित्यं न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत्।
ततो मया नाचिकेतश्चितोऽग्निः अनित्यैर्द्रव्यैः
प्राप्तवानस्मि नित्यम्॥10॥

हे देव!
मुझ नचिकेता को आपने
मुदित किया बतला प्रज्ञ
प्रभु कृपा से तर्कानुभूति भी मुझे दी
हे नाथ!
अडिग श्रद्धा मेरी
प्रलोभनों से परे अतः आत्म-ज्ञान करें।
कर्म फल भोग सब हैं अनित्य
नित्य है असंभव
तथ्य यह सत्य की सत्य है अचिन्त्य,
अग्नि का चयन किया निःस्पर्ह वृति से
ब्रह्म मिलते मात्र निरासक्त प्रवृति से॥

श्लोकः11-12

कामस्याप्तिं जगतः प्रतिष्ठां क्रतोरानन्त्यमभयस्य पारम्।
स्तोममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्ट्वा धृत्या धीरो नचिकेतोऽत्यस्राक्षीः ॥11॥
तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ॥12॥

हे नचिकेते!
तुम विरक्त
विश्व के वैभव से, धन सुख सम्पदा से
वेदोचित सुख वर्णित वृहद है
शुचिता, त्याग, विरक्ति
आवश्यक दुर्लभ है।
परम पिता सर्व व्यापी हैं
बसते हृदय मध्य
योगमाया के आवरण से करते भ्रमित
धीर साधक सतत चिन्तक
इस गहन अगोचर सत्ता को जानते,
हर्ष शोक से अपने को उबारते॥

श्लोकः13-14

एतच्छ्रुत्वा सम्परिगृह्य मर्त्यः प्रवृह्य धर्म्यमणुमेतमाप्य।
स मोदते मोदनीयँ हि लब्ध्वा विवृतँ सद्म नचिकेतसं मन्ये ॥13॥
अन्यत्र धर्मादन्यत्राधर्मा-दन्यत्रास्मात्कृताकृतात्।
अन्यत्र भूताच्च भव्याच्च यत्तत्पश्यसि तद्वद ॥14॥

हे देव!
आपने मुझे अधिकारी माना
मैं आभारी हूँ,
अध्यात्म के इस उपदेश का श्रवण कर

करूँगा ग्रहण अवश्य ही,

आदरणीय आत्म-तत्व के महती ज्ञान का

तत्वमय चिंतन करूँ,

आनंद का ज्ञान करूँ प्राप्त

आदरणीय ब्रह्म ज्ञान

मुझमें हो व्याप्त।

ब्रह्म कारण है

ब्रह्म भिन्न अतीत है

ब्रह्म वर्तमान भूत-भविष्य अहम है

ब्रह्म धर्म अधर्म से परे

ब्रह्म परम पुनीत है॥

<u>श्लोकः15-17</u>

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाँसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदँ संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ॥15॥

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।

एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥16॥

एतदालम्बनँ श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम्।

एतदालज़्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥17॥

हे धर्मराज!

परम प्रणव ॐ उद्धारक

परम तत्व यह

सर्व कष्ट संहारक,

ॐ सार तत्व समस्त वेदों का

ॐ ज्ञान शब्द ताप साधन लक्ष्य का

ॐ ब्रह्मचारी का प्रणेता कठिन व्रत साध का।

ॐ अक्षय ब्रह्म स्वरूप बताया आपने

परम पुरुषोत्तम नारायण साक्षात् कराया आपने
अन्न ही ओमकार हैं,
शुद्ध तत्व साधक सुलभ
सब प्रकार हैं।
है आलंबन ओमकार
है श्रेष्ठतम अत्युतम परम
मात्र अकेला आलंबन कोई और नहीं
साधन अमोघ है
ॐ का साधक ही
प्रभु को
करता प्राप्त है॥

<u>श्लोकः18-20</u>

न जायते म्रियते वा विपश्चिन् नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित्।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणोन हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥18॥
हन्ता चेन्मन्यते हन्तुँ हतश्चेन्मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायँ हन्ति न हन्यते ॥19॥
अणोरणीयान्महतो महीया-नात्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः ॥20॥

हे नाथ!
आपने ज्ञान दिया कि
आत्मा जन्म मृत्यु से विहीन
कार्य एवं कारण से स्वाधीन
क्षय एवं वृद्धि से ऊपर होती आत्मा,
देह है नाशवान
शाश्वत सत्य यही तू जान
सनातन मूल देह, पुरातन आत्मा।

तथ्य यह है सत्य
कोई न मरता न कोई मारता
नित्य चेतन आत्मा है असंबंधित
जड़ देह की प्राचीर से।
जीवात्मा के अंतस में रहते नारायण
अति सूक्ष्म और उससे भी सूक्ष्म
कण-कण में विराजते प्रभु आप का दर्शन पाऊँ,
महामहिम! आप की कृपा से गंतव्य सदा ध्याऊँ॥

<u>**श्लोकः21-23**</u>

आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ॥21॥
अशरीरँ शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम्।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥22॥
नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लब्यः तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम् ॥23॥

हे धर्मराज!
सर्वत्र सर्वरूप व्यापक
दिव्य परम प्रभु के रूपक
गतिमान आसीन हैं आप
दूर है पर पास हैं आप
दिव्य तत्व की दिव्यता का भान कराएँ।
मरणांत देह है क्षणिक क्षयशील
मोह हर्ष शोक, विकार हैं मन के
बुद्धिमान धीर विवेकी बन
शोक का किंचित भी भय न हो
ब्रह्म ज्ञान हो।

न श्रवण से,
न प्रवचन से,
परम ब्रह्म उपलब्ध उन्हें
न तर्क से, न गर्व से
स्वीकार करता जो उन्हें
विरहाकुल भक्ति ही मिलती उन्हें॥

<u>श्लोकः24-25</u>

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वाऽपि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥24॥
यस्य ब्रह्म च क्षत्रं च उभे भवत ओदनः।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः॥25॥

हे नाथ!
बुद्धि मन इन्द्रियों को करूँ बस में
ज्ञान का न हो अभिमान
मन शांत हो, आचरण हो शुद्ध
मैं न तो हूँ प्रबुद्ध फिर भी
कृपा करते रहिये,
अंत समय आएगा तो
मृत्यु भोज बना ही लेगी
सब गर्वानुभूति रह जाएगी कि कालजयी हूँ
मृत्यु संहारक प्रभु
आपको जान सका न कोई
उत्पन्न न रहा सृष्टि में कोई॥

प्रथम अध्याय तृतीय वल्ली

श्लोकः1-2

ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ॥1॥
यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत् परम्।
अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेतँ शकेमहि॥2॥

हे देव !
सत्य कहा आपने
सु कृत का फल दिलाता मनुज रूप
मनुज ही ज्ञानशील ब्रह्म का स्वरूप
ऊष्मा एवं छाया ब्रह्म ज्ञान सदृश
भिन्न व अभिन्न दोनों में
पंचाग्नि गृहस्थ सी है।
यज्ञ आदि शुभ कार्य होते रहें सदा,
सामर्थ्य ऐसी दे सर्वदा
भवसागर को करूँ पार
भयहीन रहूँ
ब्रह्म से हो सानिध्य
यही प्रार्थना॥

श्लोकः3-4

आत्मानँ रथितं विद्धि शरीरँ रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥3॥
इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयाँ स्तेषु गोचरान्।
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः ॥4॥

हे स्वामी!

यह देह तो रथ है,
आत्मा रथी,
बुद्धि रूपी सारथी इस रथ को
मन के नियंत्रण से हाँकता है।
पञ्च इन्द्रियों को ज्ञानियों ने
पञ्च अश्व की भाँति बताया,
विषय के इस जग में विचारने को
अति प्रलोभनीय मार्ग बताया,
चंचल मन के वशीभूत इन्द्रियों से युक्त
भोग में डुबाना
यह ही रह गया.
हे परमात्मा! आपको कदापि न भूलूँ॥

<u>श्लोकः5-6</u>

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥5॥
यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः ॥6॥

हे स्वामी!
चंचल मन की वृतियों से
कदापि हो नहीं सकता विवेकी
विज्ञान रहित व्यक्ति
पा सकता नहीं ब्रह्म
दुष्ट अश्वों की भाँति
अनियंत्रित इन्द्रियों वाला
लक्ष्यहीन भटकता है,
जिनका सारथि अश्वों को

नियंत्रण में नहीं रख सकता।
मेरी इन्द्रियां मेरे वश में हों,
मैं मन से प्रसन्न रहूँ,
मानसिक भौतिक लौकिक लक्ष्य
निष्पादित हों,
कुशल सारथी की तरह
इन्द्रियों को वश में रख
विवेक अक्षुण्ण रखूँ
दिव्य सम्पदा को प्राप्त करूँ॥

<u>श्लोकः7-9</u>

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति॥7॥
यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते॥8॥
विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान्नरः।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम्॥9॥

हे जगत्पति!
विषय रूपी विष का पान करने वाले
असंयमित मन के विकारी,
कदापि सतगुण से समृद्ध हो नहीं सकते,
कदापि परम पद को प्राप्त नहीं कर सकते,
कदापि जन्म मृत्यु चक्र से निकल नहीं सकते।
परन्तु हे नाथ!
मुझे सदा संयमी, विवेकी
ऋत भाव से युक्त बनाओ,
मरण जनम से मुक्त कराओ,

निष्काम भाव से कर्म करूँ,
मृत्यु भी विशेष हो
प्रभु कृपा कभी न शेष हो।
बुद्धि रूपी सारथी के नियंत्रण में हो मन
विवेक स्थिर हो
पार संसार हो
आप करुणागार हो॥

<u>**श्लोकः10-12**</u>

इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः॥10॥
महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः॥11॥
एष सर्वेषु भूतेषु गूढोऽऽत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥12॥

हे नाथ!
इन्द्रियों से अधिक विषय अर्थ,
अर्थ से अधिक है बलवान मन,
मन से परम होती बुद्धि,
बुद्धि से प्रबल है आत्मा
आत्म बल प्राप्त हो मुझे परमात्मन्!
प्रभु!
जीवात्मा अव्यक्त हो आत्म शक्ति के अधीन होती
अव्यक्त तो अधीन परम प्रभु आपके,
सृष्टि में किंचित भी
साम्यता आपके दिव्य गुणों से परे होती।
माया से विभूषित प्रभु रहते आप

अगोचर हैं फिर भी आप
स्वयं को आवृत करिए
मुझ को सूक्ष्मतम ज्ञान दीजिये
दया की दृष्टि प्रदान कीजिये
आपके दर्शन पा सकूँ
ऐसा विश्व में समदृष्टि अभिज्ञान दीजिये॥

<u>श्लोकः13-15</u>

यच्छेद्वाङ् मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि।
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि॥13॥
उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति॥14॥
अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात् प्रमुच्यते॥15॥

हे प्रभु!
मुझे स्थिरप्रज्ञ बनाओ,
मन को शुचि ज्ञान से
शुचि ज्ञान को आत्मा से
आत्मा को आप से
निरुद्ध विलीन कर
आपको पाना है।
ज्ञानियों के ज्ञान से लाभान्वित हो जाऊँ
दुष्कर ब्रह्म ज्ञान
ब्रह्म विधान
मुझे प्राप्त हो
कृपा आपकी हो
तीक्ष्ण छूरे की धार सा

ज्ञानियों का ज्ञान प्राप्त हो।
रूप, रस, स्पर्श, गंध, शब्द
असीम आद्यंत अद्भुत नित्य रहें
ब्रह्म जीवात्मा से श्रेष्ठ हैं
सत्य ज्ञात हो,
जन्म-मरण चक्र से निजात हो॥

श्लोकः16-17

नाचिकेतमुपाख्यानं मृत्युप्रोक्तँ सनातनम्।
उक्त्वा श्रुत्वा च मेधावी ब्रह्मलोके महीयते॥16॥
य इमं परमं गुह्यं श्रावयेद् ब्रह्मसंसदि।
प्रयतः श्राद्धकाले वा तदानन्त्याय कल्पते।
तदानन्त्याय कल्पत इति॥17॥

हे नाथ!
शुद्ध उपाख्यान जो आपने दिया नचिकेता को,
सनातन सत्य है उक्ति वह
ज्ञानियों द्वारा रक्षित है यह
अग्नि तत्व का श्रवण है यह
महिमा है यह
प्रतिष्ठित ब्रह्म की
ब्रह्म लोक पद मिले।
विद्वत जनों की सभा मध्य
शुद्ध विचार से कहते कथा
परब्रह्म विषय की गूढ़ यथा
प्राप्त करते पद अनंत
अक्षय फल मिलता अंत॥

॥ ईति कठोपनिषद प्रथम अध्याय॥

<u>द्वितीय अध्याय प्रथम वल्ली</u>

<u>श्लोकः1-3</u>

पराञ्चि खानि व्यतृणत् स्वयम्भूस्तस्मात्पराङ् पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ॥1॥
पराचः कामाननुयन्ति बाला स्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम्।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ॥2॥
येन रूपं रसं गन्धं शब्दान् स्पर्शाँश्च मैथुनान्।
एतेनैव विजानाति किमत्र परिशिष्यते। एतद्वै तत् ॥3॥

हे स्वामी!
इन्द्रियों की बहिर्मुखी वृति,
वाह्य जग, आत्मा सब यही हैं
यह अदृश्य रचना आपकी ही है,
धीर बनूँ, परम पद प्राप्त करूँ,
इस अनृत जग से विमुख होकर
सत्य की पहचान करूँ।
बाह्य भोगों को चाह कर
मैं मूर्ख नहीं बनना चाहता कदापि,
मृत्यु बंधन में पड़ कर न तरु
बुद्धि विवेक प्राप्त हो
अमर पद प्राप्त हो,
परमार्थ में मन लगे,
विशुद्ध तत्व का भान हो।
शब्द रस स्पर्श गंध की ये इन्द्रियाँ
नचिकेता को दिया ज्ञान जो
हैं ज्ञानेन्द्रियाँ
कुछ शेष नहीं क्षण भंगुर संसार में
क्षय होता यह क्षणिक संसार है॥

श्लोकः4-6

स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ॥4॥
य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात्।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वै तत् ॥5॥
यः पूर्वं तपसो जातमद्भ्यः पूर्वमजायत।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभिर्व्यपश्यत। एतद्वै तत् ॥6॥

हे जगतपति!
स्वप्न के अंत में,
जागृतावस्था के अंत में,
ज्ञान अनुभव की चेतना
आपकी कृपा से हो प्राप्त,
दुःख, शोक, किंचित मात्र भी न हो,
आप ही आप सर्व व्याप्त हों।
कर्म करता रहूँ,
वर्तमान, भूत, भविष्य,
आपके द्वारा संचालित
जीवन प्रदाता का आभास हो,
निंदा, घृणा, द्वेष शून्य हो ब्रह्म
तत्व ज्ञान दीजिये।
हिरण्यगर्भ रूप में प्रगट थे आप
जल से भी पूर्व व्याप्त थे आप,
विशुद्ध सर्व अंतर्यामी प्रभु
आप हृदय रूपी कन्दरा में विराजें॥

श्लोकः7-9

या प्राणेन संभवत्यदितिर्देवतामयी।
गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीं या भूतेभिर्व्यजायत। एतद्वै तत् ॥7॥
अरण्योर्निहितो जातवेदा गर्भ इव सुभृतो गर्भिणीभिः।
दिवे दिवे ईड्यो जागृवद्भिर्हविष्मद्भिर्मनुष्येभिरग्निः। एतद्वै तत् ॥8॥
यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च गच्छति।
तं देवाः सर्वेऽर्पितास्तदु नात्येति कश्चन। एतद्वै तत् ॥9॥

हे स्वामी!
देव स्वरूप, अदिति स्वरूप,
इन प्राणों में बसने वाले स्वामी,
हृदय रूपी गुफा में रहने वाले स्वामी,
यह आद्यांत अद्भुत शक्ति
आपकी ही प्रदत्त है।
गर्भिणी के गर्भ में स्थित बालक
अदृश्य है परन्तु सत्य है,
दो काष्ठ में छिपी अग्नि सत्य है
हवन सामग्री से जो याज्ञिक नित्य वंदना करें
वह ही आपको प्रसन्न हैं।
सब देवता वहीं से प्रकट एवं लीन होते
जहाँ से सूर्य उदित एवं अस्त होते,
यह विधान सत्य है,
इसके भेद आगामी हैं,
अतः आप ही ब्रह्म हैं॥

श्लोकः10-12

यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह।
मृत्योः स मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ॥10॥

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानाऽस्ति किंचन।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति ॥11॥
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते। एतद्वै तत् ॥12॥

हे परमेश्वर!
इस लोक में उस लोक में
सर्वत्र ब्रह्म आप ही हो सही,
अणिमा आपके बिना है नहीं कहीं,
मोहवश न अनेक की भावना
कामना से त्रस्त होऊँ
जन्म चक्र से न ग्रसित होऊँ
शुद्ध पवित्र मन से गहन ब्रह्म हो प्राप्त
जीवात्मा से पूर्ण हैं ब्रह्म यह ज्ञात
भिन्न नहीं जन्म मृत्यु चक्र
न फँस पाऊँ इसमें कृपा रहे अग्र
आप तो सर्व व्यापी हैं
हृदय में स्थित हो विशेष
हे त्रिकालदर्शी आप ही ब्रह्म हैं
भिन्न न होकर भी अभिन्न हैं॥

श्लोकः13-15

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः। एतद्वै तत् ॥13॥
यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति।
एवं धर्मान् पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति ॥14॥
यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ॥15॥

हे नाथ!
अंगुष्ठ मात्र पुरुष
धूम्र हीन ज्योति के विगत आगत
और है नियंत्रक,
त्रिकाल सीमा से परे
ब्रह्म भी आप हैं
उच्च शिखर पर पावस बूँदें
बरस ज्यूँ गिरती दुर्ग के चहुँ ओर,
पृथक दिख कर भी एक ही जल है,
धर्म भी दीखता पृथक
प्रभु पृथक कदापि नहीं।
नचिकेता को जो बताया
बताये हमें
विश्व की सृष्टि ईश की ही है
संसार पर कृपा आपकी है
शुद्ध जल में मिल जल होता शुद्ध
ब्रह्म तत्व में मिल होया ब्रह्म सत्य॥

द्वितीय अध्याय द्वितीय वल्ली

श्लोकः1-3

पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः।
अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते। एतद्वै तत् ॥1॥
हँसः शुचिषद्वसुरान्तरिक्षसद्होता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत्।
नृषद्वरसदृतसद्व्योमसद् अब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत् ॥2॥
ऊर्ध्वं प्राणमुन्नयत्यपानं प्रत्यगस्यति।
मध्ये वामनमासीनं विश्वे देवा उपासते ॥3॥

हे नाथ!
यह शरीर एक नगर की भाँति बताया आपने,
ग्यारह द्वारों से सज्जित,
जीवात्मा इसे पूजते,
शोक का महाकारण है यही जग
बंधन मुक्त कर
ब्रह्म से आसक्त कर।
इस देह रूपी गृह में अतिथि रूप
विराजित वसु अंतरिक्ष अनूप है,
परब्रह्म हंस सा पवित्र शुद्ध इसका रूप है।
व्योम स्थित शुद्ध प्रतिष्ठित अग्नि रूप यज्ञ
भू, गिरि, नदी, अन्न, औषधि सब
समाविष्ट हैं इसमें।
अपान वायु को अधोगति दो,
प्राणों को उर्ध्व गति दो,
हृदय में स्थित होकर आपने,
दिव्य प्रभु आपका वंदन करूँ
आपके गुणों को नमन करूँ॥

श्लोकः4-6

अस्य विस्रंसमानस्य शरीरस्थस्य देहिनः।
देहाद्विमुच्यमानस्य किमत्र परिशिष्यते। एतद्वै तत् ॥4॥
न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन्।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ॥5॥
हन्त त इदं प्रवक्ष्यामि गुह्यं ब्रह्म सनातनम्।
यथा च मरणं प्राप्य आत्मा भवति गौतम ॥6॥

हे स्वामी!
शरीर अस्थिर है,
प्राण गमन शील हैं,
मृत्यु चक्र स्थाई है,
प्राण के जाने के बाद शरीर में रहता है क्या?
ब्रह्म अंश आपका।
न प्राण से, न अपान से,
मृत्यु पर विजय पाए कोई,
जीवात्मा में तो आप ही ब्रह्म रूप हैं,
प्राण अपान दोनों आश्रित आप पर,
पृथक अस्तित्व नहीं कोई।
अब प्रभु ज्ञान मुझको दीजिये
जो नचिकेता को दिया धर्मराज ने
जीवात्मा का होता क्या?
मर कर जाती कहाँ?
परब्रह्म का स्वरूप क्या?
बतलाएँ प्रभु ॥

श्लोकः7-9

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः।
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥7॥

य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन। एतद्वै तत् ॥8॥
अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥9॥

हे नाथ!
प्रत्येक जीव का जन्म
कर्म एवं संस्कार के अनुसार होता है,
मनुज हो या कीट, पशु इत्यादि,
यही ब्रह्म तत्व का ज्ञान है।
आप विशुद्ध तत्व आप परम ब्रह्म अमृत हैं,
समस्त ब्रह्माण्ड आपमें समाहित,
आप ही शाश्वत ऋत हैं,
अतिक्रमण विहीन विधान आपका,
आप कर्मफल दाता,
प्रलायोपरांत जागते
होते वही विज्ञ।
प्रभु ज्यूँ अग्नि होती एक
रूप उसके अनेक,
सब प्राणियों में संभावनाओं से व्याप्त आप,
आधार अनुरूप ज्ञात आप,
ब्रह्म एक है विविधता लिए
विवेक है अनुरूपता लिए
ज्ञान हमको दीजिये॥

श्लोकः10-11-12

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ॥10॥

सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुः न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥11॥
एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ॥12॥

हे जग स्वामी!
पवन एक है,
परन्तु गति द्वारा उत्पन्न
शक्ति अनेक है,
आप भी ब्रह्म स्वरूप एक हैं,
आप अनेकों वेश में समस्त प्राणियों को
नियंत्रित करते हैं।
सब लोकों के नेत्र स्वरूप,
भास्कर का तेज़ भी
जीव के गुण दोष से रहित
एक सा प्रभाव करता है,
कर्म दोष के अनुकूल
रह कर भी,
पृथक है निर्लिप्त है,
अपने दिव्य पुंज से
सम्पूर्ण विश्व आलोकित है।
आप एक हो फिर भी
अनेकों वेश में रहते,
अंतस में स्थित आत्मा के अखिलेश हो,
ज्ञान आत्म का दीजिये
ज्ञानी मुझे कीजिये,
यह शाश्वत सनातन ज्ञान मुझे दीजिये॥

श्लोकः13-15

नित्योऽनित्यानां चेतनश्चेतनानाम् एको बहूनां यो विदधाति कामान्।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीराः तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥13॥
तदेतदिति मन्यन्तेऽनिर्देश्यं परमं सुखम्।
कथं नु तद्विजानीयां किमु भाति विभाति वा ॥14॥
न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥15॥

हे ईश!
नित्यों में नित्य आप,
चेतन में चेतन आप,
आत्मा में आत्मा आप,
धीर, ज्ञानी देखते सर्वदा
सनातन शांति आप में,
कर्मों के विधान का
विधाता परम स्रोत हो।
अलौकिक आनंद, परम सुख सर्वोपरि
परब्रह्म ज्ञान से,
वचन वाणी प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष
मात्र अनुभव ध्यान से,
अतिशय गूढ़ ज्ञान प्राप्त हो, धन्य हों,
न तारागण न भानुप्रकाश, न शशि प्रभा
अग्नि आलोकित है सदा सर्वदा
विराजित सर्वत्र यह
पृथक और निर्लिप्त है
अणिमा ब्रह्माण्ड की दिव्य ज्योत प्रदीप्त है,
प्रभु यूँ ही उजास रहे॥

द्वितीय अध्याय तृतीय वल्ली

श्लोकः1-3

ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते।
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन। एतद्वै तत् ॥1॥
यदिदं किं च जगत् सर्वं प्राण एजति निःसृतम्।
महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥2॥
भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः ॥3॥

हे प्रभु!
उर्ध्व मूल वृक्ष की शाखा सम सनातन काल से,
ब्रह्माण्ड है ब्रह्म मूल विशाल से
लोक सब आश्रित हैं
विशुद्ध अमृत से ब्रह्म तत्व के
मुझे भी कर आसीन।
इस चराचर जगत के स्वामी आप,
सर्व प्राण कृपालु आप
ब्रह्म के भय से न डरें
वरण ब्रह्म को ग्रहण करें
तत्वज्ञ हम बनें।
आपके भय से भय स्वरूप होती तप्त अग्नि
आपके भय से ही तपता सूर्य है
आपके ही भय से धरा ध्वनित है
भय आपका प्रज्वलित है
इंद्र वायु मृत्यु देव भी भयभीत हैं
इसी से आवृत सृष्टि नियमित है॥

श्लोकः4-6

इह चेदशकद्बोद्धुं प्राक्शरीरस्य विस्रसः।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ॥4॥
यथाऽऽदर्शे तथाऽऽत्मनि यथा स्वप्ने तथा पितृलोके।
यथाऽप्सु परीव ददृशे तथा गन्धर्वलोके
छायातपयोरिव ब्रह्मलोके ॥5॥
इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत्।
पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति ॥6॥

हे नाथ!
मानव के विस्तार से पूर्व,
विविध योनी लोक में
कल्पों तक आबद्ध
यह शरीर व्यापक सिद्ध है।
ज्यूँ स्वप्न में, ज्यूँ पितृलोक में,
ज्यूँ दर्पण में उभरती आकृति,
ब्रह्म अंतःकरण में स्थित है,
धूप छाया की तरह परमात्मा दृष्टिगत है
दिव्य दृश्य यह भव्य है
विविध रूपों में इन्द्रियों की सत्ता पृथक है
आत्मा का स्वरुप विलक्षण है
उदयमान लय की प्रवृति पृथक है
शुचि, नित्य, चेतन, एक रस
अपरिवर्तित करो प्रभु॥

श्लोकः7-9

इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्वमुत्तमम्।
सत्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुत्तमम् ॥7॥

अव्यक्तात्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिङ्ग एव च।
यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ॥8॥
न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥9॥

हे प्रभु!
सब ज्ञानियों से जाना,
मन इन्द्रियों से है श्रेष्ठ
बुद्धि मन से श्रेष्ठ,
बुद्धि से श्रेष्ठ है आत्मा,
जीवात्मा सर्वश्रेष्ठ है,
जीवात्मा से श्रेष्ठ प्रकृति का जीवांश है,
अवयव शक्ति है, पूर्वांश है।
आप निराकार अव्यक्त दिव्य व्यापक हो
बंधन मुक्त जीव को दिव्य कैसे कहें,
आनंद रूपी ब्रह्म अमृत है ईश आप,
मूढ़ मति को अन्तः समाहित करो प्रभो।
नैनों से प्रत्यक्ष देख कर भी
ब्रह्म कदापि दृश्य नहीं,
जबकि अनुपम अगोचर ब्रह्म
नित सर्वत्र व्यापी है
सतत चिंतन हृदयंगम, निर्मल बुद्धि योग है,
मिल मुझे आप छुड़ाए जन्म मृत्यु के भोग से॥

श्लोकः10-12

यदा पञ्चावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम् ॥10॥
तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ॥11॥

नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ॥12॥

हे प्रभु!
मेरे ध्यान में आप केन्द्रित हों
मन सहित सभी ज्ञानेन्द्रियों को स्थिर करूँ,
बुद्धि को आप में लीन करूँ,
समस्त चराचर जगत अदृश्य है
ब्रह्म का दर्शन कराओ।
इन्द्रियों की स्थिर धारणा में
योगमिति स्थित है,
अस्थिर योग तो कभी उदित होता कभी अस्त
सामयिकी योग शुचि गत सिद्ध
साधक बन होऊँ प्रसिद्ध।
वाणी मन नेत्र कर्मेन्द्रियों से तो नहीं
वाह्य साधनों से रचित नहीं
मन बुद्धि ज्ञानेन्द्रियों से सुलभ
ब्रह्म मुझे हो प्राप्त,
जिज्ञासु साधक हूँ
निश्चय हो आप सर्व व्याप्त॥

<u>श्लोकः 13-15</u>

अस्तीत्येवोपलब्धव्यस्तत्वभावेन चोभयोः।
अस्तीत्येवोपलब्धस्य तत्वभावः प्रसीदति ॥13॥
यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ॥14॥
यथा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्ध्यनुशासनम् ॥15॥

हे नाथ!

अस्तित्व से उपलब्ध
व्यस्त तत्व भाव निश्चय ही
दृढ़ भावना है
तत्व रूप साधना तो अटल है
ब्रह्म प्राप्ति का साधन विकल है
अशेष कामनाएँ साधक के मन की
मरणशील व्यक्ति पर आपकी कृपा,
समूल नाश करती हैं वृत्तियाँ
ब्रह्म रूप आप मुझे प्राप्त हों
जड़ता, मोह, माया, ममता, अज्ञान
सब पतन के मार्ग हैं ठीक से जान
ग्रन्थियाँ काट दे ज्ञान
मुक्त कर मुझ मानव को,
शुद्ध सनातन तत्व का दे उपदेश ॥

<u>श्लोकः 16-18</u>

शतं चैका च हृदयस्य नाड्य-स्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका ।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विष्वङ् ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ॥16 ॥
अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः ।
तं स्वाच्छरीरात्प्रवृहेन्मुञ्जादिवेषीकां धैर्येण ।
तं विद्याच्छुक्रममृतं तं विद्याच्छुक्रममृतमिति ॥17 ॥
मृत्युप्रोक्तां नचिकेतोऽथ लब्ध्वा विद्यामेतां योगविधिं च कृत्स्नम् ।
ब्रह्मप्राप्तो विरजोऽभूद्विमृत्युरन्योऽप्येवं यो विदध्यात्ममेव ॥18 ॥

हे जगन्नाथ!
देह शत नाड़ियों का बतलाया गया,
सुषुम्ना नाड़ी हृदय की उनमें से एक,
उर्ध्वगामी अन्तकाल में प्रयाण कराती यह
पुनः स्वकर्म अनुसार जन्म पाते हैं।

ब्रह्म विराजे सबके हृदय में
अंगुष्ठ प्रमाण परिमाण है यह,
तथापि यह स्थित है फिर भी अद्भुत है
प्रत्येक समय रहता व्याप्त
आत्मा देह से पृथक
ज्यूँ मुंज सींक से पृथक
व्यंजन यह ज्ञात।
हे प्रभु!
यह ज्ञान हमें दीजिये
नचिकेता को धर्मदेव ने दिया
मृत्यु विहीन, विकार विहीन,
विशुद्ध हमें कीजिये
ब्रह्मवेत्ता मर्म ज्ञाता बनूँ
जन्म-मृत्यु के चक्र से मुक्त रहूँ
आत्मज्ञान मिले, ब्रह्म लीन रहूँ॥
ॐ शान्तिः। शान्तिः। शान्तिः।

॥ इति काठ्कोपनिषदि द्वितीयाध्याये तृतीया वल्ली॥

तैत्तिरीय उपनिषद

कृष्ण यजुर्वेद

तैत्तिरीय उपनिषद - परिचय

तैत्तरीयोपनिषद प्रमुख दस उपनिषदों में से एक है, यह कृष्ण यजुर्वेद से लिया गया है। 108 उपनिषदों की श्रृंखला में यह सातवाँ है एवं सृष्टि की विभिन्न रचनाओं में खुशी एवं सुख के विवरण को चित्रित करता यह उपनिषद वैदिक काल के अंतिम भाग में रचा गया है। 6-7 शताब्दी ईशा पूर्व आदि शंकराचार्य ने इसका भाष्य 11 सदी पश्चात् किया। यजुर्वेद के तैत्तरीय आर्यंक से उद्धृत इस उपनिषद में तीन भाग है एवं 31 उपभाग। शिक्षवाली में 12 उपभाग, जो शिक्षा के बारे में बताते हैं कि किस विधि से वैदिक ग्रंथों को उच्चारित करना चाहिए। दूसरे भाग ब्राह्मण वल्ली इसमें 9 उपभाग हैं यह ब्रह्मानंद ज्यूँ ब्राह्मण के कर्तव्य बुद्धि मन एवं अपेक्षाओं को बताता है, तीसरे भाग भृगु वल्ली में 10 उपभाग हैं यह ऋषि भृगु द्वारा दिए गए उत्तर विशिष्ट ब्राह्मणों का संवाद है।

॥ अतिथि देवो भवः ॥

इसी उपनिषद से लिया गया है।

ब्रह्म ज्ञान ही मुख्य उद्देश्य है इस उपनिषद का, भाग को वल्ली कहा गया है, उपभाग को अनुवाक।

शान्तिपाठ में एक विशेष बात है पहली बार वायु को ब्रह्म कहा गया है, अर्थात वायु में भी ब्रह्म है, पाँच संहिताओं का भी विवरण है।

तैत्तिरीय उपनिषद भारतीय उपनिषदिक परंपरा का एक अत्यंत महत्वपूर्ण, संतुलित और व्यावहारिक ग्रंथ है। यह **कृष्ण यजुर्वेद** से संबद्ध है और ज्ञान, आचार तथा आनंद—तीनों को समन्वित रूप में प्रस्तुत करता है। जहाँ कुछ उपनिषद आत्मा और ब्रह्म के दार्शनिक विवेचन पर केंद्रित हैं, वहीं तैत्तिरीय उपनिषद जीवन को पूर्णता में देखने वाला उपनिषद है—जिसमें शिक्षा, नैतिकता, आत्मज्ञान और

ब्रह्मानंद एक ही सूत्र में बँधे हुए हैं।

'तैत्तिरीय' नाम का संबंध **तित्तिरि ऋषि** तथा उनकी वैदिक शाखा से माना जाता है। यह उपनिषद तैत्तिरीय आरण्यक का ही एक भाग है, जिससे इसका स्वरूप अत्यंत प्राचीन और प्रामाणिक सिद्ध होता है। वैदिक परंपरा में यह उपनिषद गुरुकुलीय शिक्षा-पद्धति और ब्रह्मविद्या—दोनों का प्रतिनिधि ग्रंथ है।

तैत्तिरीय उपनिषद की संरचना अत्यंत स्पष्ट और सुव्यवस्थित है। इसमें **तीन वल्लियाँ (अध्याय)** हैं—

1. **शिक्षावल्ली**
2. **आनन्दवल्ली (ब्रह्मानन्दवल्ली)**
3. **भृगुवल्ली**

ये तीनों वल्लियाँ क्रमशः **आचार → ज्ञान → अनुभूति** की यात्रा को रूपायित करती हैं।

शिक्षावल्ली : शिक्षा और आचार का दर्शन

शिक्षावल्ली उपनिषद का प्रथम भाग है, जिसमें—

- वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और संधि
- गुरु-शिष्य संबंध
- सत्य, धर्म और आचरण
- माता-पिता, आचार्य और अतिथि की महिमा

का अत्यंत सुंदर और व्यावहारिक विवेचन है।

प्रसिद्ध उपदेश—

सत्यं वद। धर्मं चर।

इसी वल्ली से प्राप्त होता है। यह भाग स्पष्ट करता है कि **आचार के बिना ज्ञान अधूरा** है।

आनन्दवल्ली : ब्रह्म और आनंद का विवेचन

आनन्दवल्ली उपनिषद का दार्शनिक केंद्र है। इसमें—

- ब्रह्म को सत्य, ज्ञान और अनंत के रूप में परिभाषित किया गया है।
- पंचकोश सिद्धांत (अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय, आनन्दमय)।
- ब्रह्मानंद की क्रमिक अनुभूति का गहन विवेचन है।

यहाँ आनंद को केवल मानसिक सुख नहीं, बल्कि **ब्रह्म की अनुभूति** कहा गया है।

भृगुवल्ली : अनुभूति का मार्ग

भृगुवल्ली संवादात्मक शैली में रचित है। इसमें **भृगु ऋषि** अपने पिता **वरुण** से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करते हैं। यह ज्ञान–

- श्रवण
- मनन और
- अनुभूति

के क्रम से विकसित होता है।

यह वल्ली यह स्पष्ट करती है कि **ब्रह्मज्ञान तर्क से नहीं, अनुभव से सिद्ध होता** है।

दार्शनिक विशेषताएँ

तैत्तिरीय उपनिषद की प्रमुख विशेषताएँ हैं–

- ज्ञान और आचरण का अद्वैत
- पंचकोश सिद्धांत का मौलिक विवेचन
- ब्रह्मानंद की अनुभूतिपरक व्याख्या
- शिक्षा को आध्यात्मिक साधना के रूप में प्रस्तुत करना

यह उपनिषद जीवन से पलायन नहीं, बल्कि **जीवन को ही साधना** बना देता है।

भाषा और शैली

तैत्तिरीय उपनिषद की भाषा–

- सरल
- सूत्रात्मक
- काव्यात्मक और
- उपदेशात्मक

इसमें कठोर तर्क की अपेक्षा **संतुलित बोध** अधिक है, जिससे यह सामान्य पाठक और विद्वान—दोनों के लिए ग्राह्य बनता है।

सामान्य पाठक के लिए महत्व

सामान्य पाठक के लिए यह उपनिषद सिखाता है कि—

- जीवन का उद्देश्य केवल ज्ञान नहीं, सदाचार भी है
- बाह्य अनुशासन से आंतरिक शुद्धि की ओर बढ़ना चाहिए
- सच्चा आनंद आत्मा की गहराई में निहित है

शोधार्थियों के लिए महत्व

शोध की दृष्टि से तैत्तिरीय उपनिषद—

- पंचकोश सिद्धांत का मूल स्रोत
- वैदिक शिक्षा-दर्शन का प्रामाणिक ग्रंथ
- ब्रह्मानंद की अनुभूतिपरक व्याख्या
- आरण्यक-उपनिषद परंपरा की सशक्त कड़ी है।

उपसंहार

तैत्तिरीय उपनिषद भारतीय दर्शन का वह उपनिषद है जहाँ शिक्षा, आचार और आनंद एकाकार हो जाते हैं। यह उपनिषद बताता है कि आत्मज्ञान जीवन से अलग नहीं, बल्कि जीवन के माध्यम से ही प्राप्त होता है। प्रकाशन की दृष्टि से यह ग्रंथ सामान्य पाठक के लिए जीवन-दर्शन है और शोधार्थी के लिए उपनिषदिक परंपरा की एक अनिवार्य कुंजी।

प्रथम अनुवाक / शांति पाठ

ॐ शं नो मित्रः शं वरुनः शं नो भवत्वर्यमा।
शं नो इन्द्रो ब्रहस्पति। शं नो विष्णुरुक्रमः।
नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षम ब्रह्मासि।
त्वमेव प्रत्यक्षम ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतुम वदिष्यामि।
सत्यम वदिष्यामि। तन्मामवतु। तत्वक्तार्मवातु।
अवतु माम, अवतु वक्तराम।
ॐ शांतिः। शांतिः। शांतिः॥
हे अधिष्ठाता!
मेरे हितकर हों सब देव आप,
इंद्र, मित्र, वरुण, बृहस्पति, अर्यमा।
प्रत्यक्ष ब्रह्म विराजते
वायु देव आप में, नमन करूँ आपको,
प्रभो, ग्रहण, भाषण, आचरण, सदा सत्य ही रहे,
ऋतु के देव ऋतु रूप में हमें रक्षा करें।
शांति दें, शांति दें, शांति दें प्रभो॥

द्वितीय अनुवाक / शिक्षा वल्ली

ॐ शिक्षा व्याख्यास्यमः। वर्णः स्वरः। मात्रा बलम।
साम संतानः।
इत्युक्तः शिक्षाध्यायः।
हे नाथ!
अनुकरणीय सभ्य भाषा का ज्ञान हो
विद्या व्याकरण का भान हो,
वर्ण, संधि, स्वर, मात्राओं का शुद्ध अनुमान हो,
वर्णों का अभीष्ट उच्चारण हो,
गान शास्त्रीय समान हो,
वेद उच्चारण की शिक्षा मिले
कृपा आपकी रहे।

तृतीय अनुवाक

श्लोक-1

सह नो यशः। सह नो ब्रह्मवर्चसम।
अर्थातः संहिताया उपनिषदम व्याख्यास्यामः। पञ्चस्वधिकरणेषु।
अधिलोकमधिज्यौतिषमधिविद्यम धि प्रजमध्यातमम
ता महासम्हिता इत्याचक्षते अथादिलोकम।
प्रथ्वी पूर्व रूपं। द्यौरुतर्रुपम। आकाशः संधिः ॥1॥

हे प्रभु!
शिष्य आचार्य के
यश, ब्रह्म, वर्चस्व की वृद्धि करो आप,
पञ्चस्वाधिकार
लोक ज्योति प्रज्ञा विद्या अध्यात्म
की संहिता उपनिषद करते व्याख्या
भूमि, नभ, द्यौ, संधि उत्तर वायु, संयोजक
रचित यह ग्रन्थ॥

श्लोक-2

वायु संधानम। इत्याधिलोकम। अधाधिजौतिषम।
अग्निः पूर्व रूपं। आदित्य उत्तर रूपं। आपः संधि।
वैध्रुतः संधानम। इत्याधिजौतिषम। अथाधिविध्यम।
आचार्यः पूर्व रूपं॥2॥

हे देव!
अग्नि है पूर्व रूप, सूर्य उत्तर रूप,
जल मेघ का अस्तित्व द्वय संधि रूप,
विद्युत सेतु है इनकी संधि का
संधि है संधान,

यही है ज्योति,
यही विषयक तत्व
मुझे प्राप्त हो।

<u>श्लोक-3</u>

**अन्तेवास्युत्तर रुपम। विद्याः संधि। प्रवचन संधानम।
इत्यधिविद्यम। अथाधिप्रजम। माता पूर्व रूपं।
पितौत्तार्रुपम। प्रजा संधिः। प्रजनम संधानम।
इत्याधिप्रजम ॥3॥**

हे प्रभु!
प्रथम वर्ण जो आते वे गुरु रूप हैं
उत्तरार्ध में लघु (शिष्य) रूप हैं।
दोनों के सामंजस्य से प्रकट होती विद्या
संधि का ज्ञान हो जिसे वही अस्तित्व संधान है,
यह विद्याक संहिता विषय इस उपनिषद का
विधान है।
माता तो पूर्व रूप, पिता हैं उत्तर
दोनों की संधि
प्रजनन से उत्पन्न करती संतति,
प्रजा का यही विषय यही संहिता
उपनिषद का तत्व ज्ञान है।

<u>श्लोक-4</u>

**अथाध्यात्मं। अधरा हनुः पूर्व रूपं।
उत्तरा हनुः उत्तर रूपं। वाक्संधिः। जिह्वा संधानम।
इत्याध्यतामम। इतिमा महासंगहिता।
य एवमेता महासंघिता व्याख्याता वेद।
संधियेते प्रजया पशुभि।
ब्रह्मवर्चसे नानाद्द्येने सुवग्येर्ण लोकेन ॥4॥**

हे नाथ!
नीचे का जबड़ा पूर्व ऊपर का उत्तर रूप
दोनों की संधि प्रकट करते वाक् स्वरूप
वाणी ही बनती ब्रह्मरूप,
जो शक्ति विलक्षण महान है।
यह आत्म विषयक तत्व उपनिषद के प्राण हैं।
इन पञ्च महान संहिताओं से जान
जीवन शांतिमय करूँ,
संतान, पशुधन, ब्रह्म, वर्चस अन्य भोग प्राप्त करूँ
प्रभु यही तो आपका गुणगान है॥

चतुर्थ अनुवाक

श्लोक-1

यश्छन्द्सामृषभि विश्वरूपः।
छन्दोभ्योऽध्याम्रुतातसमृभव।
स मेन्द्रो मध्य स्पर्नोतु।
अमृतस्य देव धारणों भूयासम।
शरीर में विचरणं। जिव्हा में मधुमतमा।
कर्णाभ्याम भूरी विश्रुवम।
ब्रह्मणः कोशोऽसि मेधयाः पिहितः।
श्रुतं में गोपाय। श्रव्हंती वितंवाना॥1॥

हे जग स्वामी!
ॐकार निसृत है वेदों से
पावन श्रेष्ठ अमृत सा
मेघ से संपन्न इंद्र करते कृपा
मृदु भाषी बनूँ, देह स्वस्थ हो,
कर्ण सुने तो कल्याण प्रद स्वर,
शुभ बोल याद रहें
कल्याण करूँ॥

श्लोक-2

कुर्वाणाऽचीरमात्मनः। वासंगसि मम गावस्च।
अन्नपाने च सर्वदा। ततो में श्रीयमावह।
लोमशाम पशुभिः सह स्वाहा।
आ मा यन्तु ब्रह्मचारिणीः स्वाहा।
वि माऽऽयन्तु ब्रह्मचारिणीः स्वाहा।
प्र माऽऽयन्तु ब्रह्मचारिणीः स्वाहा।

दयायन्तु ब्रह्मचारिणीः स्वाहा।
शमायन्तु ब्रह्मचारिणीः स्वाहा॥2॥
हे नाथ अधिष्ठाता!
समस्त खाद्य वस्तुएँ रहें उपलब्ध मुझे,
गौ सुख को प्राप्त करूँ,
वस्त्र, आभूषण, पशुधन का संवर्धन रहे,
अग्नि देव रखें कृपा सदा
ऋद्धि सिद्धि बनी रहे करूँ यज्ञ सर्वदा।
रखु ब्रह्मचर्य व्रत अक्षुण,
पिपासु रहूँ ज्ञान का,
मन की चंचलता का हो दमन
विधान रहे शमन,
आहुति स्वाहा की करो स्वीकार
प्राप्त हो मुझे लक्ष्य अपार,
स्वीकार करें अंगीकार करें हे ब्रह्म एकाकार॥

<u>श्लोक-3</u>

यशो जनेऽसानि स्वाहा। श्रेयां वस्यसोऽसानि स्वाहा।
तं ता भग प्रविशानी स्वाहा। स मा भग प्रविश स्वाहा।
तस्मिन् तत्सहस्त्रशाखे निभ्गाह्म त्वयी मृजे स्वाहा।
यथाऽऽपः प्रवताऽऽयन्ति यथा मासा अहर्जरम।
एव मा ब्रह्मचारिणीः। धात्रायन्तु सर्वतः स्वाहा।
प्रतिवेशोऽसि प्र मा भाहि प्र मा पद्यस्च॥3॥
हे देव!
कीर्ति बढे सर्वत्र सृष्टि में,
श्रेष्ठ धनार्जन हो,

अति शील रहूँ सब की दृष्टि में
आहुति स्वाहा की करो स्वीकार
प्राप्त हो मुझे लक्ष्य अपार।
ज्यूँ सब सरिताओं के जल का समापन
उदधि में होता
काल मास संवत्सर समय के गर्भ में सोता
मैं भी ब्रह्मचर्य का पालन करूँ,
दैदीप्यमान हो जीवन
आपके ब्रह्म को प्राप्त करूँ॥

पंचम अनुवाक

श्लोकः1-3

भूर्भुवः सुवरिती वा एतास्तिस्त्रो व्याहृतयः।
तासामू ह स्मैताम चतुर्थी। महाचमस्यः प्रवेदयते।
मह इति। तत ब्रह्मः। स आत्मा। अंगान्यन्या देवताः।
भूरिति वा अयं लोकः। भू इत्यन्तिरिक्षम
सु वरित्यसो लोकः ॥1॥
मह इत्यादित्यः। आदित्येन वाव सर्वे लोका महियन्ते।
भूरिति वा अग्निः। भुव इति वायुः। सुवरित्यादित्यः।
मह इति चन्द्रमाः। चंद्रमसा वाव।
सर्वाणि ज्योतिन्षि महियन्ते। भूरिति वा ऋचः।
भुव इति सामानि।
सुवृति यजूङ षि ॥2॥
मह इति ब्रह्म। ब्रह्मणा वाव सर्वे वेदा महियन्ते।
भूरिति वै प्राणः। भुव इत्यपानः। सुवरितीव्यानः।
मह इत्यन्नम। अन्नेन वाव सर्वे प्राण महियन्ते।
ता वा एतास्चतस्त्रस्चुतुर्ध। चतस्त्रश्रच्तश्रो व्याहृतयः।
ता यो वेद।
स वेद ब्रह्मः। सर्वेह्यस्मै देवा वलिमाव्हन्ति ॥3॥

हे देवेश्वर!
महा चम् ऋषि पुत्र ने सर्व प्रथम गायत्री जाना
ॐ भूर्भुवः स्वः को पहचाना,
भू एवं भुव स्वःकी आत्मा चतुर्थ व्याहृति
ब्रह्म से जान

सूर्य जग प्रकाश कर्ता को मान।
भूः अग्नि व्यवहार में है,
भुवः वायु और स्वः आदित्य प्रसार में है,
चन्द्र मन के देव दे रहा ज्योति सत्य की,
भूः भुवः ऋग्वेद सम, स्वः मह यजुर्वेद ब्रह्म हैं,
आपका सर्व तत्व वेदों से उद्गम्य है।
भू प्राण है भुव अपान स्व व्यान
मह अन्न इन चार वायु से प्राण ही प्राण है,
चार से सोलह व्यहृति व् भेद हैं,
मुझे इनका ज्ञान करायें प्रभु,
पाऊँ आपसे भेंट॥

षष्ठ अनुवाक

श्लोकः1-2

स य एषोंऽतरहृदय आकाशः। तस्मिन्नयम
पुरुषो मनोमयः।
अमृतो हिरण्यमयः। अन्तरेण तालुके।
य एष स्तन इवावलम्बते।
सेंद्र्योनीः। यत्रासो केशान्तो विवर्तते।
व्यपोहं शीर्षकपाले।
भुरित्यग्नौ प्रतितिष्ठिति।
भुव इति वायौ ॥1॥
सुवरित्यादित्ये। मह इति ब्रह्मणी।
आप्नोति स्वराज्यम।
आप्नोति मनसस्प्तिम। वाकपतिश्चक्षुष्पतिः।
श्रोत्रपतिविज्ञान्पतिः। एतततो भवति।
आकाश शरीरं ब्रह्म।
सत्यात्म प्रानारामम मन आनंदम।
शंतिसमृद्धममृतम।
इति प्राचीनयोग्योपासस्व ॥2॥

हे अविनाशी!
हृदय अंतर में अनंतर आकाश है,
ज्योतिरूप प्रभु आपका ही प्रकाश है,
प्रभु अविनाशी आप विराजते विशुद्ध अभारूप में,
मनोमय महिमा अमित आपकी प्रभारूप में।
दो तालुओं के मध्य जो कंठ है,
ब्रह्म रंध्र मस्तक कपोल मध्य स्थित है

यहाँ से निसृत सुषुम्ना मूल ब्रह्म की
अन्तकाल में अग्नि सूर्य ब्रह्म गति मिलती।
जो ब्रह्म स्थित रह निज स्वामी है बनता
वह आपकी विशेषता भूल अहम का शाषक बनता
मुझे ब्रह्म के स्वामी मन का विजेता बनाएँ,
मन वाणी नेत्र श्रोत्र इन्द्रियों का ज्ञाता बनाएँ।
हे ब्रह्म! आप गगन सम व्यापी
एकमात्र आपकी सत्ता ही है
समस्त इन्द्रियों का शान्तिकरण
आपकी सन्निधि में होता
मुझे अमृत गमय बनाएँ प्रभु॥

सप्तम अनुवाक

प्रुथ्विव्यन्तरिक्षम द्यौदिर्शोऽवान्तर्दिषाः।
अग्निर्वायुरादित्य्स्चन्द्रमा नक्षत्राणि।
आप औषधयो वनस्पतय आकाश आत्मा।
इत्यदिभूत म।
अथाध्यात्मं। प्राणों व्यानोऽपान उदानः समानः।
चक्षुः श्रोत्रं मनो वाक त्वक।
चर्म मान्संग स्नावस्थी मज्जा।
एतदधिविधाय ऋषिरवोचत। पांकनतम व इदं सर्वं।
पाँकतैनेव पाँकतंग स्पर्णतिती॥

हे स्वामी!
भूमि, गगन, अंतरिक्ष,
दसो दिशाएं, आवांतर दिशाएं,
अग्नि, वायु, चन्द्रमा, सूर्य, नक्षत्र,
गगन, जल, औषधि, पञ्च इन्द्रियां,
प्राण एवं समस्त पदार्थ
चर्म, मांस, मज्जा, स्नायु,
नेत्र, कर्ण, वाणी, मन, सब
पंक्दंत हैं, ऋषि मुनि उसे पूर्ण करें
प्रभु निश्चय ही आप इस विधि पवित्र करें॥

अष्टम अनुवाक

ओमिति ब्रह्म। ओमितिदः सर्वं।
ओमित्येतदनुकृतिह्र स्म वा अप्यो श्रावेत्याश्रावयन्ति।
ओमिति सामानि गायन्ति।
ॐ शोमिति शस्त्राणि शं सन्ति।
ओमित्यध्वर्युः प्रतिगर प्रतिगृणाति।
ओमिति ब्रह्मा प्रसौति।
ओमित्ग्निहौत्रमनुजानाति।
ओमिति ब्राह्मणः प्रवक्ष्यन्नाह ब्रह्मोपाप्न्नवानीति।
ब्रह्मैवोपाप्नोति॥
हे देव!
यजुर्वेद के ज्ञाता ऋषि ने जब बतलाया,
ॐ का अर्थ बड़ा विषम पाया,
ॐ ही ब्रह्म, ॐ ही विश्व, ॐ ही निज अनुकृति,
ॐ सिद्ध है,
शुभ कर्मों के अध्ययन में
यज्ञ के होत्र में
यह ऋद्धि प्रदाता है,
ऋत्विक अध्वर्यु ऋषि जो है यजुर्वेद के ज्ञाता,
यजुर्वेद की लालसा से पूछा तो बताया
ॐ सर्व प्रथम वर्ण है वेदों का॥

नवम अनुवाक

ऋतं च स्वाध्यायप्रवचने च।
सत्यम च स्वाध्यायप्रवचने च।
तपश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
दमश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
शमश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
अग्नियश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
अग्निहोत्र च स्वाध्यायप्रवचने च।
अतिथ्यश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
मानुषं च स्वाध्यायप्रवचने च।
प्रजा च स्वाध्यायप्रवचने च।
प्रजन्नश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
प्रजातिश्च स्वाध्यायप्रवचने च।
सत्यमिति सत्यवचा राथितरः।
तप इति तपोनितीः पौरुशिष्ठीः।
स्वाध्यायप्रवचने एवेति नाको मौद्गल्यः।
तद्धि तपस्तद्धि तापः॥

हे जगत्राता!
स्वाध्याय प्रवचन से ज्ञात हुआ
श्रेष्ठ हैं ये सब
वेदादि अध्ययन, मानवोचित कर्म-धर्म,
शम दम नियम तप अग्निहोत्र
कुटुंब प्रजनन कर्म
धर्माचरण, सत्य भाषण,
तप तो सर्वश्रेष्ठ है
नित्य तप करने वाले मुनि,
उनका रात्रिसूक्त मत ही श्रेष्ठ है॥

<u>दशम अनुवाक</u>

अहम वृक्षस्य रेरिवा। कीर्तिः पृष्ठं गिरिरेव।
उर्ध्व पवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि।
द्रविडम सर्व्वसम।
सुमेध अम्रुतोक्षितः। इति त्रिशंको वेदानुवचनम॥
हे स्वामी!
यह जग एक वृक्ष है जिसका उच्छेदक आप हैं,
रवि सम अन्नोत्पादक शक्ति
पर्वत सम कीर्ति आपकी
अमृत सम अतिशय पावन आप,
ज्योतिसम सकारात्मक योग आप,
अमृत सिंचित स्वुत्पन्न
ज्ञान का मूल श्रोत आप हैं॥

एकादश अनुवाक

श्लोकः1-4

वेदमनुच्य्या चार्योंतेवसिन्मनुशास्ति।
सत्यम वद। धर्म चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः।
आचार्याय प्रियम धनमाहृत्य
प्रजातन्तुम मा व्यवच्छेत्सीः।
सत्यान्न प्रमदितव्यम।
स्वाध्याय प्रवाचनाभ्याम न प्रमदितव्यम ॥1 ॥
देवपितृकार्यभ्याम न प्रमदितव्यम। मातृ देवो भव।
पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव। अतिथि देवो भव।
यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि।
नो इतिरानि।
यान्यस्माकम सुचरितानि।
तानि त्वयोपास्यानि ॥2 ॥
नो इतिराणी। ये के चारुमच्छेर्यान्ग्सो ब्रह्मणाः।
तेषा त्वयाSSसनेन प्रश्वसित्व्यम। श्रद्धया देयम।
अश्रद्धयाSदेयम। श्रिया देयम। ह्रिया देयम।
भिया देयम।
संविदा देयम।
अथ यदि ते कर्मविचिकित्सा वा वृतविचिकित्सा
वा स्यात ॥3 ॥
तथा तत्र ब्रह्मणाः सममर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः।
अलुरक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तेषु वर्तेरन।
तथा तत्र वर्तेथाः। अथाभ्याख्यातेषु।
तथा तत्र ब्रह्मणाः सममर्शिनः। युक्ता आयुक्ताः।
अलुरक्षा धर्मकामाः स्युः। यथा ते तेषु वर्तेरन।

तथा तेषु वर्तेथाः। एष आदेशः। एष उपदेशः।
एषा वेदोप्निषत। एत दनुशासनं। एवमुपसित्व्यम।
एवमु चैतदुपास्यम ॥4 ॥

हे प्रभो!
जो शिष्य है रहते गुरुवर के आश्रम में,
गुरुवर उन्हें करते शिक्षित,
सत्य वचन,
स्वाध्याय, धर्माचरण की शिक्षा मिलती रहे,
हे देव! पितृ, मात, आचार्य सब चलें धर्म पथ पर,
वेदों में अध्ययन रूचि रखूँ मैं सदा।
माता पिता हों या हों आचार्य अतिथि
सब रहे देव सदृश
निर्दोष सात्विक आचरण और
श्रेष्ठ कर्मों का ज्ञान हो,
दान, श्रद्धा, सेवा, शुभ विचार रहें,
दंभ हीन विनम्र निष्काम
वृति मुझमें प्रधान हों।
कर्तव्य मार्ग में कोई दुविधा न रहे,
युक्ति विधि से मार्ग दर्शन मिले
प्राप्त कुशल गंतव्य हो,
दोषी से कैसा व्यवहार हो,
निर्देश दें आप प्रभु
श्रेष्ठ आचार्य बन॥

<u>द्वादश अनुवाक</u>

ॐ शं नो मित्रः शं वरुनः शं नो भवत्वर्यमा।
शं नो इन्द्रो ब्रहस्पति। शं नो विष्णुरुक्रमः।
नमो ब्रह्मणे नमस्ते वायो। त्वमेव प्रत्यक्षम ब्रह्मासि।
त्वमेव प्रत्यक्षम ब्रह्म वदिष्यामि। ऋतुम वदिष्यामि।
सत्यम वदिष्यामि। तन्मामवतु। तत्वक्तार्मवातु।
अवतु माम, अवतु वक्तराम।
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः॥1॥

हे अधिष्ठाता!
मेरे हितकर हों सब देव आप,
इंद्र, मित्र, वरुण, बृहस्पति, अर्यमा।
प्रत्यक्ष ब्रह्म विराजते
वायु देव आपमें, नमन करूँ आपको,
प्रभो, ग्रहण, भाषण, आचरण, सदा सत्य ही रहे,
ऋतु के देव ऋतु रूप में हमें रक्षा करें।
शांति दें, शांति दें, शांति दें प्रभो॥

ब्रह्मानंद वल्ली ॥ शान्ति पाठ ॥

ॐ सह नाववतु। सह नो भुनक्तु। सह वीर्य करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः॥
हे प्रभु!
अति शक्तिशाली बनूँ गुरु शिष्य सह,
रक्षा करें प्रभु, उचित खाद्य को ग्रहण करूँ,
पालन करें,
दोनों की शिक्षा अध्ययन को विशेष एवं शुद्ध करें,
द्वेष हो समाप्त, स्नेह हो प्राप्त,
त्रिविध ताप का हो नाश॥
मन शांत हो, शांत हो, शांत हो॥

प्रथम अनुवाक

ॐ ब्रह्मविदाप्नोति परम। तदेषाऽभ्युक्ता।
सत्यम ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं
गुहायाम परमे व्योमन।
सोअश्नुते सर्वान कामान सह। ब्रह्मणा विपश्चितेति॥
तस्माद्वा एतास्मादात्मन आकाशः
संभूतः। आकाशाध्वायुः।
वायोरग्निः। अग्नेरापः। अदभ्यः पृथिवि।
पृथ्विया औषधयः। औषधिभ्योऽनन्म। अन्नात्पुरुषः।
स वा एष पुरुषोअन्नर्समयः।
तस्येह्नेवं शिरः।
अयं दक्षिणः पक्षः। अयमुत्तरः पक्षः।
अयमात्मा। इदम पुच्छं प्रतिष्ठा।
तदप्येष श्लोको भवति॥1॥

हे परमेश्वर!
विशुद्ध ब्रह्म ज्ञानी ज्यूँ ब्रह्म को प्राप्त कर लेते,
सत्यस्वरूप ज्ञान रूपी अनादि अनंत ब्रह्म को,
स्थित हो आप ह्रदय रूपी गुहा में गगन से व्यापक
तत्वग्य हो, महिमा न कही जाय,
मुझे भी ब्रह्म ज्ञान प्राप्त हो।
प्रथम ब्रह्म से नभ तत्व, फिर अग्नि, वायु, जल,
भूमि, आदि प्रकट हुए क्रमशः
तत्पश्चात औषधि अन्न मानव अन्न रसमय मूल,
पक्षी, मानव अंग-प्रत्यंग उत्पन्न हुए॥

द्वितीय अनुवाक

अन्नाद्वे प्रजाः प्रजायन्ते। याः काश्च पर्थिवीं श्रीताः।
अथः अन्नेनैव जीवन्ति। अथैन्दपि यत्यन्ततः।
अन्नं हि भूतानां ज्येष्ठं। तस्मात् सर्वौषधमुच्यते।
अन्नाद भूतानि जायन्ते। जातान्न्यन्नैन वर्धन्ते।
अद्यतेअति च भूतानि। तस्माद्न्म तदुच्यत इति।
तस्माद्वा एतस्माद्न्न रस्मयात।
अन्योंतर आत्मा प्राणमयः।
तेंनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव।
तस्य पुरुषविधताम। अन्व्यम पुरुषविधः।
तस्य प्राण एव शिरः। व्यानो दक्षिणः पक्षः।
अपान उत्तरः पक्षः। आकाश आत्मा।
पृथिवि पुच्छम प्रतिष्ठा। तदप्येष श्लोको भवति॥

हे नाथ!
यह अन्न सभी प्रजा वासियों
सभी भूलोक वासियों
को रखे जीवित,
अंततः अन्न में ही निमग्न होते,
सर्व औषधियों में,
यह ब्रह्म रूपी अन्न विद्यमान है,
अतः अन्न प्राणी को, प्राणी अन्न को
एक दूसरे पर आश्रित हैं।
यह अन्नमय स्थूल देह भिन्न सूक्ष्म देह से,
अनुगत है पुरुष विधा

यह विधा अनुरूप भी है अभिन्न भी है
खग रूप कल्पना उड़ती सदा
पुच्छल तारा सी धरा प्राण हैं
दाहिने व्यान, बाएं अपान,
पंख नभ के आत्मा रहें॥

तृतीय अनुवाक

प्राणं देवा अनु प्राणन्तिः मनुष्याः पशवश्च ये।
प्राणों हि भुतानामायूः। तस्मात् सर्वायुषमुच्यते।
सर्वमेव त आयुर्यन्ति। ये प्राणम ब्रह्मोपासते।
प्राणों हि भुतानामायूः। तस्मात् सर्वायुषमुच्यत इति।
तस्यैष एव शारीर आत्मा। यः पूर्वस्य।
तस्माद्वा एतस्मात प्राणमयात।
अन्योंतर आत्मा मनोमयः।
तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव।
तस्य पुरुषविधताम। अन्व्यम पुरुषविधः।
तस्य यजुरेव शिरः। ऋगदक्षिणः पक्षः।
सामोत्तरः पक्षः।
आदेश आत्मा। अर्थ्वान्गिरसः पुच्छम प्रतिष्ठा।
तदप्येष श्लोको भवति॥

हे स्वामी!
प्राण ही देव हैं, प्राण ही आधार,
मनुष्य पशु विश्व के कर्णधार,
प्राण जीवन, प्राण आयु, प्राण प्राणाधार,
आपका ही रूप प्रभु प्राण
जानूँ, उपासना करूँ प्राण की,
मुझे तत्वज्ञ बनाएँ,
अमर प्राण के ब्रह्म रूप आप।
मन पूरित पुरुष अति भिन्न है उस प्राणमय से,
मनोमय ही होते प्राण मय वे अभिन्न हैं,

खग सी कल्पना करूँ तो,
यजु से मस्तक,
ऋग एवं साम से दोनों पंख हैं,
अर्थव के मन्त्र है पूँछ
और आधार असंख्य है,
प्रभु मुझे दे आधार कृपा करें॥

चतुर्थ अनुवाक

यतो वाचो निर्वतंते। अप्राप्य मनसा सह।
आनंन्दम ब्राह्मणों विद्वान्। न विभेति कदाचनेति।
तस्यैष शारीर आत्मा। यः पूर्वस्य।
तस्माद्वा एत्स्मान्मनोमयात।
अन्योंतर आत्मा विज्ञानमयः।
तेनैष पूर्णः। स वा एष पुरुषविध एव।
तस्य पुरुष विधताम।
अन्वयं पुरुष विधः। तस्य श्रधैव शिरः।
ऋतं दक्षिणः पक्षः।
सत्यमुत्तरः पक्षः। योग आत्मा। महः पुच्छम प्रतिष्ठा।
तदप्येष श्लोको भवति॥

हे ब्रह्मात्मन!
कोई भी नहीं पहुँच सकता आप तक,
ये जो मन है, सहित
इन्द्रियों के, वाणी के,
आपके ब्रह्मत्व में स्थित वास्तविकता तक,
मुझे आपका भान हो,
ब्रह्म का ज्ञान हो,
कदाचित भी भयभीत न रहूँ
मन एवं देह दोनों
आपमें प्रणित हों।
मन के प्राण में जो आत्मा है,
सदैव विज्ञानमय है यह

पुरुष के विविध आकृति से अनुगत
यह आत्मा स्थित हो अनवरत
सत्य आचरण
विशुद्ध पंख दोनों,
श्रद्धा हैं मस्तक
इस खग रूप में
आत्मा मध्य भाग है,
आधार यह अनुपम है .
बस यूँ ही आत्म ज्ञान मिलता रहे॥

पंचम अनुवाक

विज्ञानं यज्ञं तनुते। कर्मणि तनुते अपि च।
विज्ञानं देवा सर्वेः। ब्रह्म ज्येष्ठ मुपासते।
विज्ञानं ब्रह्म चेद्वेद।
तस्माच्चेन्न प्रमाद्यति। शरीरे प्राप्मनो हित्वा।
सर्वां कामन्समस्नुत इति। तस्यैष एव शारीर आत्मा।
यः पूर्वस्य। तस्माद्वा एतास्माद्विज्ञानमयात।
अन्योंतर आत्माऽऽनंद्मयः। तेनैष पूर्णः।
स वा एष पुरुषविध एव। तस्य पुरुषविधताम।
अन्व्यम पुरुष विधः। तस्य प्रियमेव शिरः।
मोदो दक्षिणः पक्षः।
प्रमोद उत्तरः पक्षः। आनंद आत्मा।
ब्रह्म पुच्छम प्रतिष्ठा।
तदप्येष श्लोको भवति॥

हे नाथ!
विज्ञान है जो सब यज्ञों का, कर्मों का विस्तारक,
मुझे समस्त देवों के संग बहु रूप से
विज्ञान का साधक बनाओ,
प्रमाद एवं पाप विहीन बनाओ
ताकि विज्ञान का ज्ञान प्राप्त कर सकूँ,
मुझे इस दिव्यता के भोग का अधिकारी बनाओ।
यह विज्ञानमय जीवात्मा आपसे भिन्न है,
पुरुष आकृति जो अनुगत है,
आपसे अनुरूप है अभिन्न है,

खग रूप में जो
मस्तक है वह तो आनंद है,
पुच्छ प्रतिष्ठा है आप ब्रह्म स्वरूप की
मोड़ है बाएं पंख, प्रमोद दाहिने पंख
आप अगम्य रूप से कृपा करें॥

षष्ठ अनुवाक

असनैव स भवति। असद्ब्रह्मेति वेद चेत।
अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद। संतमेनम ततो विदुरिती।
तस्यैष एव शारीर आत्मा। यः पूर्वस्य।
अथातोऽनुप्रश्नाः। उताविद्वान्मुम लोकं प्रेत्य।
कश्चन गच्छतिऽऽऽऽ....उ।
आहो विद्वान्मुम लोकं प्रेत्य कश्चित्मश्नुताऽऽऽ....उ।
सोऽकामयत।
बहु स्याम प्रजायेयेति। स तपोअतप्यत।
स तपस्तप्त्वा।
इदं सर्वसृजत। यदीदम किंच। तत्स्रुष्ट्वा।
तदेवानुप्राविशत। तदनुप्रविश्य। सच्च त्याच्चाभवत।
निरुक्तं चानिरुक्तं च। निलयनम चानिल्यनम च।
विज्ञानं चाविज्ञानं च। सत्यम चानृतं च सत्यम भवत।
यदिदं किंच। तत्सत्यमित्यचक्षते।
तदप्येष श्लोको भवति॥

हे स्वामी!
आप ब्रह्म स्वरूप नास्ति, असत हैं
यही भाव जिसमें प्रधान रूप से है,
उसकी वृति, आचरण, कर्म तदनुसार ही हैं,
अगर मैं सोचूँ कि आप हैं, सत हैं,
आस्तिक रूप से मेरे भाव में हैं
निश्चित मैं एक दिन आपको
प्राप्त करूँगा।

देह की अंतर आवर्ती आत्मा हैं आप,
ब्रह्म हो, आत्म भू आनंद हो, आनंद अंतरात्मा हैं,
शरीर एवं शरीर का भेद
यही विशेष रूप से जानने योग्य है,
आप अंतर्यामी हैं यह तुलना भी
सोचना मिथ्या है,
मुझे देह रहस्य बताएँ।
सोचता हूँ ब्रह्म है भी नहीं
परलोक में विज्ञाता ब्रह्म का
ज्ञाता है कि नहीं,
अविज्ञाता भी क्या परलोक में प्राप्त है
इस सत्य या असत्य तथ्य को जानने का इच्छुक हूँ।
ब्रह्म रूप एक हैं आप,
अनेक रूप में हैं प्रकट विस्तृत होते।
सृष्टि को भी संवर्धित करते ले संकल्प
अर्चना अनंतर आपकी
आप बसते सृष्टि में हैं अगम्य
जड़-चेतन,
आश्रय-अनाश्रय
ऋत-अनृत
सब आप हो ब्रह्म रूप में आप हैं॥

सप्तम अनुवाक

असद्वा इदमग्र आसीत। ततो वै सद्जायत।
तदात्मानं स्वयमकुरुत।
तस्मात्त्सूकृतमुच्यत इति।
यद्वै तत सुकृतम। रसो वै सः।
रसं ह्येवाह्यम लब्ध्वाऽऽनंदी भवति।
को हमेवान्यात्कः प्रान्यात।
यदेष आकाश आनंदों न स्यात।
एष हमेवाऽऽनंद्याति।
यदा ह्येवैष एतास्मिन्नदृश्ये
अनात्म्येअनिरुकतेअनिलयनेअभयं।
प्रतिष्ठं विन्दते। अथ सोअभयं गतो भवति।
यदा ह्येवैष एतस्मिन्न्रुदरमंतरम कुरुते।
अथ तस्य भयम भवति।
तत्वेव भयम विदुषोऽमंवानस्य।
तदप्येष श्लोको भवति॥

हे स्वामी!
पूर्व में अव्यक्त यह जड़-चेतन जगत था,
जब था अव्यक्त तभी प्रकट हुई सृष्टि,
ब्रह्म ने स्वयं को रचा जड़ चेतन अवस्था में,
सुकृत तब जग ने आपको कहा।
हे सुकृत! ब्रह्म रस आनंदमयरूप
जीवात्मा से अनूप सम्बन्ध
विशाल गगन सा मुदितमय ब्रह्म
प्राण क्रिया को संचारित करता।

व्याकुल जीवात्मा अगम्य ब्रह्म को
अनुपम अगोचर वैदेही
परम आश्रय दाता ब्रह्म रूप स्वामी आप
मैं निर्भय हो ब्रह्म स्थित इस लाभ को वरण करूँ,
शोक भय से परे अभय पद को प्राप्त करूँ।
मैं जीवात्मा किंचित भी न रहूँ दूर ब्रह्म से
जन्म मृत्यु रूपी भय से दूर रहूँ।
मुझ अज्ञानी को उस भय से ग्रसित न कर
मुझे अभिमानी न बना जन्म मृत्यु मुझमें
निहित न हो॥

अष्टम अनुवाक

श्लोक-1

भीषाऽस्माद्वातः पवते। भीषोदेति सूर्यः।
भीषाऽस्माद्ग्निश्चेंद्र्श्च। मृत्युर्धावति पंचम इति।
सैषाऽऽनन्दस्य मीमांसा भवति।
युवा स्यात्साधूयुवाऽध्यायकः।
आशिष्ठो दृधिश्ठो बलिष्ठः।
तस्येयं पृथिवि सर्व वितस्य पूर्णा स्यात।
स एको मानुष आनंदः। ते ये शतं मानुषा आनंदाः ॥1॥

हे नाथ!
जन्म मृत्यु के भय से पवन सूर्य सब चलते
अग्नि इंद्र संचालित होते, सूर्य उदित अस्त होते
ब्रह्म स्वरूप नाथ आप ही संचालक हैं नियामक हैं
निज धर्म अनुसार सब रचते।
युवा शक्ति में असाधारण आचरण श्रेष्ठ हों,
वेद के ज्ञान से कुशलता, धन धान्य श्री भी मिले,
इन्द्रियां दृढ़ हों, अंग बलिष्ठ हों,
आनंद की मीमांसा में श्रेष्ठतम ज्ञान हों।

श्लोक-2

स एको मनुष्य गंधार्वाणामानंदः।
श्रोत्रियस्य चाकाम्हत्स्य।
ते ये शतं मनुष्य गंधार्वाणामानंदाः।
स एको देव गंधार्वाणामानंदः।
श्रोत्रियस्य चाकाम्हत्स्य।
ते ये शतं देवगंधार्वाणामानंदाः।

स एकः पितृणाम चिरलोकलोकानामानंदः।
स एक आजानजानाम देवानामानन्दः ॥2॥

हे परमेश्वर!
मनुष्य, गंधर्व लेते जो आनंद
श्रोत्रिय विज्ञ को सहज ही प्राप्त वह स्वभाव से,
ऐसे सौ आनंद मनुज गन्धर्वों के समान हैं
देव गन्धर्वों के एक सुख के,
यह विमल निस्पृह सुख
मिले सात्विक श्रुत विज्ञ को
जो है सहज संभाव्य प्राप्त वेदज्ञ को।
शत सुख देव गन्धर्वों के
करते नहीं आसक्त
पितृ लोक के पितरों को
ये विज्ञ आनंद स्वतः प्राप्त करते।
अजानाज नमक सुख देवों का आनंद है
उन्हें लोको के भोगों की इच्छा नहीं
श्रोत्रिय सिद्ध आनंद अनुभूत करते।

<u>श्लोक-3</u>

श्रोत्रियस्य चाकाम्हत्स्य।
ते ये शतं आजानजानाम देवानामानन्दः।
स एकः कर्मदेवानाम देवानामानन्दः।
ये कर्मणा देवान्पियंती। श्रोत्रियस्य चाकाम्हत्स्य।
ते ये शतं कर्म देवानां देवानामानन्दः।
स एको देवानामानन्दः। श्रोत्रियस्य चाकाम्हत्स्य।
ते ये शतं देवानामानन्दः। स एक इंद्रस्याSSनन्दः ॥3॥

हे प्रभु!

आजानाज तो देव आनंद हैं,
यह आनंद देवों के शत आनंद सम है,
जो विरत हैं, वेदज्ञ श्रोत्रिय हैं
ऐसे सैकड़ों आनंद उन्हें मिलते हैं।
जो कर्म देवों के शत आनंद है
सौ सुख से बढ़कर यह एक है
अमर होकर भी जो सुख आनंद मिले
उसकी भी चाह नहीं
अज्ञ तो नहीं की सहज प्राप्य को प्राप्त करूँ।
जो सौ आनंद देवों के वर्णित हैं,
ऐसे सौ सुख इंद्र के एक आनंद के बराबर है
परन्तु यह सुख भी वेदज्ञ को विचलित नहीं करते
मुझे सहज सुख प्राप्त हो
सर्वज्ञ बनूँ जानूँ आपको।

<u>श्लोक-4</u>

श्रोत्रियस्य चाकाम्हत्स्य। ते ये शतमिन्द्रास्याSSनंदाः।
स एको वृहस्पतेरानंदः। श्रोत्रियस्य चाकाम्हत्स्य।
ते ये शतं वृहस्पतेरानंदाः। स एकः प्रजपतेरानंदः।
श्रोत्रियस्य चाकाम्हत्स्य।
त ये शतं प्रजपतेरानंदाः।
स एको ब्रह्मण आनंदः। श्रोत्रियस्य चाकाम्हत्स्य ॥4॥

हे प्रभु!
यह जो इंद्र का आनंद है जग में,
सौ इंद्र आनंद सम एक आनंद बृहस्पति को है,
जो जीव बृहस्पति के सुखों में भी निस्पृह विरल रहे,
वह वेद तत्व ज्ञाता सब सुखों को सहज प्राप्त करता।

इसी प्रकार बृहस्पति के सौ आनंद
प्रजापति के एक आनंद सम
जो परम श्रोत्रिय वेद ज्ञाता होते वे
पाकर सुख प्रजापति का भी सरल निस्पृह ही रहते।
सौ सुख प्रजापति के एक सुख ब्रह्मा के
समकक्ष हैं सुख राशि आनंद,
ऐसे वेदज्ञ परम आनंद से विरत ही रहते,
निष्कामी बनूँ मैं प्रभु कृपा कीजिये,
ऐसे आनंद मुझे सहज मिलते ही रहें।

<u>श्लोक-5</u>

य यश्चाय्म पुरुषे। यश्चासावादित्ये। स एकः।
स य एवंवित। असज़्माल्लोकात्प्रेत्य।
एत मन्नमयमात्मानमुपसंग्क्रामति।
एतम प्राणमयमात्मानमुपसंग्क्रामति।
एतम मनोमयमात्मानमुपसंग्क्रामति।
एतम विज्ञानमयमात्मानमुपसंग्क्रामति।
एतम आनंदमयमात्मानमुपसंग्क्रामति।
तदप्येष श्लोको भवति॥5॥

हे परमात्मा!
आप मुझमें, आदित्य में, सब में एक ही हैं,
एकमेव ब्रह्म आप अंतर्यामी ब्रह्म
बसते नित्य आनंद में,
आप अन्न, प्राण, मनोमय, विज्ञानमय, आनंदमय,
तत्वज्ञ हैं
आप क्रमशः मुझे प्राप्त हों॥

नवम अनुवाक

यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह।
आनंदम ब्राह्मणों विद्वान्।
न विभेति कुतश्चनेति।
एतंहः वाव न तपति।
किमहं साधू नाकरवम। किमहं पापमकरवमिति।
स य एवं विद्वानेते आत्मानम स्पृणुते।
उभे ह्येवैष एते आत्मानं स्पृणुते। य एवं वेद।
इत्युपनिषत।

हे स्वामी!
मन सहित वाणी भी अप्राप्य यहाँ
विद्वान् ब्रह्मज्ञ को जिसे प्राप्य आनंद
फिर भय क्यों हो,
सर्वदा निर्भय, संताप मुक्त रहूँ मैं
ब्रह्म ज्ञान से युक्त रहूँ मैं,
मुझे अभय दान दीजिये।
तत्वज्ञ सात्विक वृति रहे सदा
दुःख सुख सम भाव रहे
पाप-पुण्य से परे रहूँ
लोभ, भय, जीवन मृत्यु संताप, मोह से दूर रहूँ,
तत्वज्ञ बन आत्मा की रक्षा करता रहूँ सदा॥

प्रथम अनुवाक : भृगु वल्ली

भृगुर्वे वारुनिः। वरुणम पितरमुपससार।
आधीहि भगवो ब्रह्मेति। तस्मा एतत्प्रोवाच।
अन्नम प्राणम चक्षुः श्रोत्रं मनो वाचमिति।
तं होवाच। यतो व इमानि भूतानि जायन्ते।
येन जातानि जीवन्ति।
यत्यप्रयंत्यभिसंविशंति। तद्विजिग्यासस्व। तद ब्रह्मेति।
स तपोअतप्यत। स तपस्तप्त्वा॥
हे स्वामी!
जब वरुण पुत्र भृगु ने की कामना ब्रह्मत्व की,
इन्द्रियां द्वार है मार्ग की बतलाया वरुण देव ने,
इन इन्द्रियों से जीते प्राणी सर्जित करते प्रयाण हैं
ब्रह्म ही प्राण है यह ज्ञान दीजिये।

द्वितीय अनुवाक

अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात। अन्नाद्ध्येव खल्विमानि।
भूतानि जायंते। अन्नेन जातानि जीवन्ति।
अन्नं प्रयंत्यभिसंविशंतित। तद्विज्ञाय।
पुनरेव वरुणम पितरमुपससार।
आधीहि भगवो ब्रह्मेति।
तं होवाच। तपसा ब्रह्म विजिग्यासस्व। तपो ब्रह्मेति।
स तपोअतप्यत। स तपस्तप्त्वा॥

हे जगदीश्वर!
अन्न होता जीवन का प्राण,
अन्न से ही है प्रयाण,
बारम्बार प्रवेश निकास भी अन्न में होता,
अन्न ही ब्रह्म है,
भृगु ने पिता से यूँ कहा
प्रभु तप से ज्ञान हो मुझे॥

तृतीय अनुवाक

प्राणों ब्रह्मेति व्यजानात।
प्राणाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायंते।
प्राणेन जातानि जीवन्ति।
प्राणम प्रयंत्यभिसंविशंतित।तद्विज्ञाय।
पुनरेव वरुणम पितरमुपससार।
आधीहि भगवो ब्रह्मेति।
तं होवाच।तपसा ब्रह्म विजिग्यासस्व।तपो ब्रह्मेति।
स तपोअतप्यत।स तपस्तप्त्वा॥
हे जगदीश्वर!
प्राण ही जीवन है
प्राण से ही है प्रयाण,
बारम्बार प्रवेश निकास भी प्राण में होता,
प्राण ही ब्रह्म है,
भृगु ने पिता से यूँ कहा
प्रभु! तप से ज्ञान हो मुझे॥

चतुर्थ अनुवाक

मनो ब्रह्मेति व्यजानात।
मनसोद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायंते।
मनसा जातानि जीवन्ति।
मनः प्रयंत्यभिसंविशंतित। तद्विज्ञाय।
पुनरेव वरुणम पितरमुपससार।
आधीहि भगवो ब्रह्मेति।
तं होवाच। तपसा ब्रह्म विजिग्यासस्व। तपो ब्रह्मेति।
स तपोअतप्यत। स तपस्तप्त्वा॥

हे जगदीश्वर!
मन ही से जीवन में प्राण,
मन से ही है प्रयाण,
बारम्बार प्रवेश निकास भी मन में होता,
मन ही ब्रह्म है,
भृगु ने पिता से यूँ कहा
प्रभु तप से ज्ञान हो मुझे॥

पंचम अनुवाक

विज्ञानं ब्रह्मेति व्यजानात।
विज्ञानाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायंते।
विज्ञानेन जातानि जीवन्ति।
विज्ञानं प्रयंत्यभिसंविशंतित। तद्विज्ञाय।
पुनरेव वरुणम पितरमुपससार।
आधीहि भगवो ब्रह्मेति।
तं होवाच। तपसा ब्रह्म विजिग्यासस्व। तपो ब्रह्मेति।
स तपोअतप्यत। स तपस्तप्त्वा॥

हे जगदीश्वर!
विज्ञान ही से जीवन में प्राण,
विज्ञान से ही है प्रयाण,
बारम्बार प्रवेश निकास भी विज्ञान में होता,
विज्ञान ही ब्रह्म है,
भृगु ने पिता से यूँ कहा
प्रभु तप से ज्ञान हो मुझे॥

षष्ठ अनुवाक

आनंदों ब्रह्मेति व्यजानात।
आनंदाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायंते।
आनंदें जातानि जीवन्ति।
आनंदम प्रयंत्यभिसंविशंतित।
सैषा भार्गवी वारुणी विद्या। परमे व्योमन्प्रतिष्ठिता।
स य एव वेद प्रतिष्ठिति। अन्न्वानन्नादो भवति।
महान्भवती प्रजया पशुभिरब्रह्मवर्चसेन।
महान कित्याम॥
हे जगदीश्वर!
आनंद रूप प्राणी ही से जीवन उत्पन्न,
आनंद से ही है प्रयाण,
बारम्बार प्रवेश निकास भी आनंद रूप में होता,
आनंद विदित विद्या ही ब्रह्म है,
भृगु ने पिता से यूँ कहा
आप ही प्राण अन्न समस्त लोकों के ज्ञाता हैं
प्रभु तप से ज्ञान हो मुझे॥

सप्तम अनुवाक

अन्नं न निंद्यात। तद्व्रतम। प्राणों वा अन्नं।
शरीरमन्नादम। प्राणे शरीरं प्रतिष्ठितम।
शरीरे प्राणः प्रतिष्ठितः। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम।
स य एत्दन्नमन्ने प्रतिष्ठितम वेद प्रतिष्ठिति।
अन्नवानन्नादो भवति।
महान्भवति प्रजया पशुभिर्ब्रह्म्वर्च्सेन।
महान कित्याम॥

हे नाथ!
यही प्राण अन्न है और अन्न ही प्राण
शक्ति है जीवनी है अन्न
न करूँ निंदा कभी अन्न की,
अन्न मेरी संजीवनी है,
इस अन्न में ही अन्न है स्थित
इस अन्न में ही प्राण है प्रतिष्ठित
अन्न प्राणाधार है
ब्रह्म के वर्चस, प्रजा, पशु, कीर्ति सभी
का आधार अन्न है
प्रभु कभी न हो मुझसे अन्न का निरादर॥

अष्टम अनुवाक

अन्नं न परिचक्षित। तद व्रतं। आपो वा अन्नं।
ज्योतिरन्नादम। अप्सु ज्योतिः प्रतिष्ठितम।
ज्योतिष्यापः प्रतिष्ठिताः। तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम।
स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम वेद प्रतिष्ठिति।
अन्न्वानन्नादो भवति।
महान्भवति प्रजया।
पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान कित्याम॥

हे स्वामी!
जल हो या अन्न
सब व्रतों से श्रेयष्कर
अन्न में परिचित
ज्योति, जल में प्रतिष्ठित अन्न ही है,
जल में तेज, तेज में जल अन्य स्वरूप हैं
प्रभु! कभी भी मैं अन्न की अवहेलना न करूँ,
सम्मान करूँ, व्रत साधना सा व्यवहार करूँ,
संतान, पशु, धन, धन्य, कीर्ति सा बहु प्रतिष्ठित रहे॥

नवम अनुवाक

अन्नं बहु कुर्वीत। तद्व्रतम। पृथिवि वा अन्नं।
आकाशोऽन्नादः। पृथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः।
आकाशे पृथिवि प्रतिष्ठिता।
तदेतदन्न्मन्ने प्रतिष्ठितम।
स य एतदन्न्मन्ने प्रतिष्ठितम वेद प्रतिष्ठिति।
अन्न्वानन्नादो भवति।
महान्भवति प्रजया।
पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन। महान कित्याम।
हे जगन्नाथ!
गगन में धरा और धरा में गगन हैं प्रतिष्ठित
अतः अन्न में ही अन्न स्थित
प्रकृति है सार्वभौम में,
अन्न के विस्तारण का संकल्प रहे सदा,
प्रभु कभी भी मैं अन्न की अवहेलना न करूँ,
सम्मान करूँ, व्रत साधना सा व्यवहार करूँ,
संतान, पशु, धन, धन्य, कीर्ति, सा
बहु प्रतिष्ठित रहे॥

दशम अनुवाक

श्लोक-1

न कंचन वसतौ प्रत्याचक्षीत। तद्व्रतम।
तस्माद्या कया च विधया बह्वन्नम प्राप्नुयात।
अराध्यस्मा अन्नमित्याचक्षते।
एतदै मुखतोअन्नम राद्धम।
मुख्तोअस्मा अन्नं राध्यते।
एतद्वै मध्य्तोअनम राद्धम।
अंततोअस्मा अन्नं राध्यते ॥1॥

हे स्वामी!
अतिथि देवो भव की वृति रहे मुझमें,
स्वागत करता रहूँ मधुर वाणी से मैं उनका,
मुझे समृद्धि अवश्य मिलेगी,
मध्य निम्न भाव हो तो क्या
अतिथि सेवा मार्ग से
ऋद्धि वृद्धि मिलती रहे सदा।

श्लोक-2

स एवं वेद। क्षेम इति वाचि।
योगक्षेम इति प्राणापानयोः।
कर्मेति हस्तयोः। गतिरिति पादयोः।
विमुक्तिरिती पायौ।
इति मानुषी समाज्ञाः। अथ देवीः। तृप्तिरिती वृष्टौ।
बलमिति विद्युती ॥2॥

हे प्रभु!

आप अपान प्राणों की रक्षा कर
वाणी में कल्याण भरो,
पैरों में गति, हाथों में कर्म-बल,
विद्युत में बल, वर्षा में संतुष्टि,
नक्षत्र-नभ में प्रभा,
शक्ति विभूषित प्रजा के वीर्य सा
ब्रह्म तेज विकसित कर मुझे अनुग्रहित करें।

श्लोकः3-6

यश इति पशुषु। ज्योतिरिति नक्षत्रेषु।
प्रजातिरमृतमानंद इत्युपस्थे। सर्व मित्याकाशे।
तत्प्रतिष्ठेत्युपासीत। प्रतिष्ठावान भवति।
तन्मः इत्युपासीत। महान्भवति। तन्मन इत्युपासीत।
मानवान्भवति ॥3 ॥
तन्मन इत्युपासीत। नभ्यन्तेऽस्मै कामाः।
तद्ब्रह्मेत्युपासीत। ब्रह्मवान्भवति।
तद्ब्रह्मणः परिमर इत्युपासीत।
पर्येंम म्रियन्ते द्विषन्तः सपत्नाः।
परि येऽप्रिया भ्रातृव्याः
स यश्चाय्म पुरुषे। यश्चासावादित्ये। स एकः ॥4 ॥
स य एवंवित् अस्माल्लोकात्प्रेत्य।
एत मन्न्मयमात्मानमुपसंग्क्रम्य्।
एतम प्राणामयमात्मानमुपसंग्क्रम्य्।
एतम मनोमयमात्मानमुपसंग्क्रम्य्।
एतम विज्ञानमयमात्मानमुपसंग्क्रम्य्।
एतमानंदमयमात्मानमुपसंग्क्रम्य्।
ईमाँल्लोकंकामानी कामरुप्यनुसंचरण।

एतत साम गायान्नास्ते। हा....वू हा...वू हा.... वू ॥5॥
अहमन्नमहमन्नमहामन्न्म।
अहमन्नादो...ऽ... अहमन्नादो....। अह्मन्नदः।
अहम श्लोककृदह्म श्लोक कृदहम श्लोक कृतः।
अहमस्मि प्रथमजा ऋताऽस्य।
पूर्व देवोज़्यो अमृतस्य ना3भायि।
यो माँ ददाति स इदेव मा3ऽऽवाः।
अह्मन्न्मन्नमदन्त्मा3द्मी।
अहम विश्वं भुवनंभ्यभवा3म।
सुवर्ण ज्योतिः। य एवं वेद। इत्युपनिषत ॥6॥
हे नाथ!
ज्यूँ नक्षत्रों में ज्योति,
पशुओं में यश,
प्रजा रत में आनंद नहीं है,
जो प्रतिष्ठित हैं, वे ही प्रतिष्ठावान हैं।
जो जिस रूप में ब्रह्म की उपासना करता
ब्रह्म रूप नाथ आप उसे वैसे ही स्वीकार्य हो,
प्रार्थना का भाव रूप स्वयं ही वैसा रूप हो
मेरा मात्र लक्ष्य ब्रह्म रहे,
भक्त बन सेवा में रत रहूँ।
मानव में आदित्य में सब में आप एक रूप विराजते,
नित्य में अनित्य में अन्तर्यामी आप विराजते,
क्रम अन्न, प्राण, मन, विज्ञान, माया, आनंद
सबका अनुसरण करूँ मैं,
इच्छित गमन करूँ मैं,

साम सा गायन करूँ मैं।
नहीं कोई आश्चर्य
ब्रह्म ही अन्न है,
भोक्ता है अन्न संयोजक
इस अन्नमय अन्न के स्वरूप को
व्यक्त करता रहूँ सदा,
अति आदि देवों से भी पहले,
अमृत रूपी अन्न को,
आदि से अंत तक भोगूँ सदा,
जून रवि प्रभा को रविन्द्र।
हे नाथ! कृपा रहे अन्न रूपी अमृत मिलता रहे॥

॥ कृष्णा यजुर्वेदीय तैत्तरीयोपनिषद समाप्त ॥

श्वेताश्वेतर उपनिषद
कृष्ण यजुर्वेद

श्वेताश्वेतर उपनिषद - परिचय

श्वेताश्वेतर उपनिषद या श्वेताश्वतरोपनिषत् प्रमुख 10 उपनिषदों में एक है, यह कृष्ण यजुर्वेद से सम्बंधित है। शोधकर्ता इसे ईशा से 400 वर्ष पूर्व लिखा हुआ बताते हैं। आदिशंकराचार्य जी ने ब्रह्म सूत्र में इसे मन्त्र उपनिषद भी बताया है। इसमें 113 श्लोक; 6 अध्यायों में विभक्त हैं। श्वेताश्वेतर ऋषि के नाम से शायद इसका नाम पड़ा है, अंतिम अध्याय में ऐसा संकेत है।

श्वेताश्वेतर का शाब्दिक अर्थ श्वेत से भी श्वेत अश्व है, जो वैदिक काल में मुले नामक पशु को कहा जाता था, जो गौ के सम पूजनीय था। जिनके पास श्वेत अश्व रहता था, वह श्रेष्ठ कहलाता था एवं उनकी हर कामनापूर्ण होती थी। वह व्यक्ति श्वेताश्वतर कहलाता था। अर्जुन को भी श्वेताश्वतर कहते थे, ऐसा महाभारत में लिखा है।

अन्य उपनिषदों के तुलना में यह अलग है। यह ईश्वर के प्रभुत्व को साकार दर्शाता है। जबकि अन्य उपनिषदों में प्रभु को निराकार बताया है। सबसे बड़ी बात यह है कि प्रभु को शिव, रूद्र जैसे नामों से संबोधित किया गया है।

मुमुक्षु संन्यासियों के कारण ब्रह्म क्या है अथवा इस सृष्टि का कारण ब्रह्म है अथवा अन्य कुछ हम कहाँ से आए, किस आधार पर ठहरे हैं, हमारी अंतिम स्थिति क्या होगी, हमारे सुख दुःख का हेतु क्या है; इत्यादि प्रश्नों के समाधान में ऋषि ने जीव, जगत् और ब्रह्म के स्वरूप तथा ब्रह्मप्राप्ति के साधन बतलाए हैं।

उनके मतानुसार कुछ मनीषियों का काल, स्वभाव, नियति, यदृच्छा, पृथ्वी आदि भूत अथवा पुरुष को कारण मानना भ्रांतिमूलक है। ध्यान योग की स्वानुभूति से प्रत्यक्ष देखा गया है कि सबका कारण ब्रह्म की शक्ति है और वही इन कथित कारणों की अधिष्ठात्री है। इस शक्ति को ही

प्रकृति, प्रधान अथवा माया की अभिधा प्राप्त है। यह अज और अनादि है परंतु परमात्मा के अधीन और उससे अस्वतंत्र है।

वस्तुतः जगत् माया का प्रपंच है। वह क्षर और अनित्य है और मूलतः जीवात्मा ब्रह्मस्वरूपी है, परंतु माया के वशीभूत होने से अपने को उससे पृथक् मानता हुआ नाना प्रकार के कर्म करता और उनके फल भोगने के लिए पुनः पुनः जन्म धारण करता हुआ सुख दुःख के आवर्त में अपने को घिरा पाता है। स्थूल देह में सूक्ष्म अथवा लिंग शरीर जो कर्मफल से लिप्त रहता है, उसके साथ जीवात्मा जन्मांतर में प्रवेश करता है। इस प्रकार यह संसार निरंतर चल रहा है। इसे ब्रह्मचक्र या विश्वमाया कहा गया है।

जब तक अविद्या के कारण जीव अपने को भोक्ता, जगत् को भोग्य और ईश्वर को प्रेरिता मानता अथवा ज्ञाता, ज्ञेय और ज्ञान को पृथक् पृथक् देखता है तब तक इस ब्रह्मचक्र से वह मुक्त नहीं हो सकता। सुख दुःख से निवृत्ति तथा अमृतत्व की प्राप्ति का एक मात्र उपाय जीवात्मा और ब्रह्म का अभेदात्मक ज्ञान है। ज्ञान के बिना ब्रह्मोपलब्धि आकाश की चटाई बनाकर लपेटने जैसा असंभव है।

ब्रह्म का स्वरूप केवल निर्गुण, सगुण-निर्गुण और सगुण बतलाया गया है। जहाँ सगुण निर्गुण रूप से विरोधाभास दिखाने वाले विशेषणों से युक्त परमेश्वर के वर्णन और स्तुतियाँ मिलती हैं। दो तीन मंत्रों में हाथ में बाण लिए हुए मंगलमय शरीरधारी रूद्र की ब्रह्मभाव से प्रार्थना भी पाई जाती है। ब्रह्म का श्रेष्ठ रूप निर्गुण, त्रिगुणातीत, अज, ध्रुव, इंद्रियातीत, निरिंद्रिय, अवर्ण और अकल है। वह न सत् है, न असत्, जहाँ न रात्रि है न दिन, वह त्रिकालातीत है इत्यादि। सर्वेंद्रियविजिंत होकर भी उसमें सर्वेंद्रियों का भास होता है, वह अणु से अणु, महान् से महान्, अकर्ता होता हुआ भी ब्रह्मा पर्यंत समस्त देवताओं का अर्थात् समस्त ब्रह्मांड का कर्ता, भोक्ता और संहर्ता है।

इसी प्रकार ब्रह्म के केवल सगुण रूप के वर्णन में उसे आदित्यवर्णा, सर्वव्यापी, सवभूतांतरात्मा, हजारों सिर, हाथ पैरवाला, भावग्राह्य, त्रिगुणमय और विश्वेरूप इत्यादि कहा गया है। निर्विशेष ब्रह्म का चिंतन अत्यंत दुस्तर होने से मनुष्य की आध्यात्मिक पहुँच के अनुसार अधिक सुसाध्य होने से सगुण और सगुण निर्गुण रूप से उपासना का विस्तार हुआ है।

अस्तु, ईंधन पर ईंधन रखकर उसमें अव्यक्त रूप से व्याप्त अग्नि को प्रकट कर लेने की तरह देह में व्याप्त ब्रह्म का प्रणव द्वारा निरंतर ध्यान करके उसका साक्षात्कार कर लिया जा सकता है। एतदर्थ द्वितीयाध्याय में प्राणायाम और योगाभ्यास की विधि विस्तारपूर्वक बतलाई गई है।

॥ शांति पाठ॥

ॐ सहनाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥
हे प्रभु!
गुरु शिष्य दोनों में तारतम्य हो
दोनों की वाणी पवित्र करो,
शक्ति इतनी दो कि
द्वेष-राग से लड़ सकें,
तेजोमय अभ्यास हो,
शांति मिले।
ॐ शांति। शांति। शांति॥

अध्याय-1

मन्त्रः1-3

ब्रह्मवादिनो वदन्ति।
किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च संप्रतिष्ठा।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ॥1॥
कालः स्वभावो नियतिर्यदृच्छा भूतानि योनिः पुरुष इति चिन्त्या।
संयोग एषां न त्वात्मभावा-दात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः ॥2॥
ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम्।
यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः ॥3॥

हे नाथ!
इस सृष्टि के कारण इसका ब्रह्मतत्व कौन है?
कहाँ से उत्पन्न हुआ? लोग कहाँ रहते हैं?
सब व्यवस्था करने वाला जगत्पति कौन है?
किसके नियमानुसार सुख-दुःख का भोग होता है?
इस जगत का संचालक कौन हैं इत्यादि।
कौन कहे कि जगत कारण सत्य ही काल है?
कौन कहे स्वभाव कारण से सृष्टि बनती है?
कौन कर्म कारण है, कर्म ही सर्व प्रमाण है?
कौन कहे भाव कारण, पंचभूत ही कारण हैं?
जीवात्मा को कौन कहे कारण कौन है?
जड़ प्रधान कारण, जड़ आत्मा अधीन सब
स्वतंत्र कार्य करे वही जीवात्मा
परन्तु सुख दुःख देने वाले कर्मबद्ध सदा,
प्रारब्ध तो भोग का कारण, यह पूर्ण स्वतंत्र नहीं,
कारण-तत्व जगत में एक ही नहीं।

आपके ध्यान में बैठ आपका दर्शन करता रहूँ,
त्रिगुणमयी से गुनातीत प्रभु आपकी शक्ति
पाता ही रहूँ,
काल रहित शासन आप हो करते
मैं पंचभूत जीव, रहूँ आपके वश में।

<u>मन्त्रः4-6</u>

तमेकनेमिं त्रिवृतं षोडशान्तं शतार्धारं विंशतिप्रत्यराभिः।
अष्टकैः षड्भिर्विश्वरूपैकपाशं त्रिमार्गभेदं द्विनिमित्तैकमोहम् ॥4॥
पञ्चस्रोतोम्बुं पञ्चयोन्युग्रवक्रां पञ्चप्राणोर्मिं पञ्चबुद्ध्यादिमूलाम्।
पञ्चावर्तां पञ्चदुःखौघवेगां पञ्चाशद्भेदां पञ्चपर्वामधीमः ॥5॥
सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति ॥6॥

हे स्वामी!
आप एक ही हैं जो प्रकृति रूपी निमित रहते,
एक आपका आधार
निमित जो प्रकृति जगाधार,
रक्षा मात्र हेतु त्रिगुण रचते
सत्व रज तम ये बनाये आपने प्रकृति के अंग,
भिन्न-भिन्न भोगों हेतु इन्हें बनाया
आठ सूक्ष्म एवं आठ स्थूल से इन्हें रचाया,
अंतःकरण की वृति बना भेद माना
दस इन्द्रिय, विषय प्राण, दस सहायक अरा,
आठ वस्तु, छः समूह से देह रूप बनाया,
अनेक रूप बना अशक्त भी बनाया,
तीन मार्ग बताये-देवयोनि, पितृयोनि, अन्य योनि....
नाभि रूप अज्ञान जगत; इसे सबका केंद्र बताया,

पुण्य-पाप निमित्त जग में परिवर्तन आपने किया,
इस भाँति जग को वर्णित कर हमें बताया।
ज्ञानेन्द्रियों के रूप में
नदीरूपी जगत के पाँच प्रवाह हैं
जग का ज्ञान पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ पूर्ण करें।
पञ्च सूक्ष्म भूत भी ज्ञानेन्द्रियों से ही निकलते,
इन सूक्ष्म भूतों से जगतनदी का मूल होता,
इसका प्रवाह होता अति भयंकर,
पञ्च प्राण इसकी तरंगें, पञ्च विषय इसके आवर्त
सर्व ज्ञान कारण मन जगत नदी का मूल दिखे,
मन बिन सृष्टि नहीं,
मन से ज्ञान सब उत्पन्न हो,
पञ्च दुःख वेग,
गर्भ, जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा एवं वैधव्य,
पञ्च भोग
अह, मृत्युभय, राग, द्वेष, अज्ञानता,
नदी के भिन्न-भिन्न रूप
पचास अंतर हैं नदी के
जो नदी जगत की वही जानता तत्व॥
सबको आश्रय देने वाले प्रभु आप एक हैं,
भव रहती जीवात्मा का परमात्मा भी एक है,
स्वयं के प्रभु वही हो आप जहाँ जीवतत्व जानते
आपका तप कर अमरत्व प्राप्त करूँ।

मन्त्रः7-9

उद्गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाऽक्षरं च।
अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः ॥7॥
संयुक्तमेतत् क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृ-भावाज् ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ॥8॥
ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशावजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत् ॥9॥

हे परमात्मा!
वेदों में भी पढ़ा, आप ही सर्वश्रेष्ठ आश्रयदाता हैं,
अविनाशी हैं,
तीनों लोकों को आश्रय देते हैं,
ज्ञानी आपको ह्रदय में अंतर्यामि रूप से जानते,
तत्पर बन, आप जन्म को टाल दें,
इतनी कृपा करें।
सृष्टि संयुक्त रूप से जीव एवं प्रकृति की है,
आप इसके धारक, पोषक हैं,
जीव तो बस भोगी है,
प्रकृति से बंधा जीव
आपके स्वरूप को भूल जाता है,
मैं आपको जानू मुझे बंधन मुक्त करें।
आप तो सर्व समर्थ, सर्व ज्ञानी हैं,
मैं जीव अल्पज्ञ हूँ,
जीव यह अल्प शक्ति वाला,
अजन्मा कहने से कहाँ बने,
अजन्मा तो प्रकृति है,
जीवों को भोग कराती,

आप अनंत, अलग होकर भी,
विश्वरूप सर्व होकर करता हैं,
प्रकृति के स्वामी! मुझे मुक्त करें।

<u>**मन्त्रः10-11**</u>

क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः।
तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्व भावात् भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः ॥10॥
ज्ञात्वा देवं सर्वपाशापहानिः क्षीणैः क्लेशेर्जन्ममृत्युप्रहाणिः।
तस्याभिध्यानात्तृतीयं देहभेदे विश्वैश्वर्यं केवल आप्तकामः ॥11॥

हे अधिष्ठाता!
प्रकृति तो है नाशवान,
जीव अविनाशी सर्वदा,
जड़ प्रकृति को उभय जीव की सत्ता आपने दी,
आपका मनन ध्यान से हो,
तन्मय हो करूँ,
आप बस मिल जायें,
भ्रम दूर हों सारे।
मैं साधक नित ध्यान धरूँ
आप मुझे प्राप्य हों और सब बंधन टूटें,
पञ्च क्लेश भी दूर हों
जन्म-मृत्यु चक्र से निवृत होऊँ
यह देह फिर आप में मिल जाये,
बस यही कृपा करें॥

॥ इति अध्याय प्रथम॥

अध्याय-2

मन्त्रः1-3

युञ्जानः प्रथमं मनस्तत्त्वाय सविता धियः।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ॥1॥
युक्तेन मनसा वयं देवस्य सवितुः सवे। सुवर्गेयाय शक्त्या ॥2॥
युक्त्वाय मनसा देवान् सुवर्यतो धिया दिवम्।
बृहज्ज्योतिः करिष्यतः सविता प्रसुवाति तान् ॥3॥

हे प्रभु!
सकल सृष्टि के निर्माता
मंगलकर्ता
प्रथम मेरी मंद बुद्धि को आप अपने रूप में लगायें,
अग्नि रहित देवों को जो शक्ति दी विषय में
पुनः इन्द्रियों में स्थापित की
वही जा बनी इन्द्रियों के काम बिना
मन की सहायक, तत्व प्राप्ति की साधक
इन्द्रियां मुझे मिले।
मन को पूर्ण रूपेण लगा कर
सर्वदा भक्ति यज्ञ करता रहूँ
पूर्ण शक्ति से आपके आनंद कार्य करता रहूँ।
करो प्रेरणा इस विधि,
स्वर्ग सम लोकों में जा,
आकाश को देखूँ
इन्द्रिय को देवों के प्रकाश के साथ,
मन बुद्धि मेरी पा ले,
यह प्रकाश मन इन्द्रिय में फैल कर जगमगाए,
आप ध्यान रूप, साधन से कृपा करें।

मन्त्रः4-6

युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्महो देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥4 ॥
युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोक एतु पथ्येव सूरेः।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ॥5 ॥
अग्निर्यत्राभिमथ्यते वायुर्यत्राधिरुध्यते।
सोमो यत्रातिरिच्यते तत्र सञ्जायते मनः ॥6 ॥

हे परमेश्वर!
ब्राह्मण भांति श्रेष्ठ कहलाऊं
चित्त की ऐसी वृत्ति बने,
अग्निहोत्र से शुभ कर्मों में बुद्धि स्थापित हो,
जगत तो मन को जानता,
अद्वितीय है यह,
सर्व महान, व्यापक, सर्वज्ञ हैं,
इसके उत्पादक आप हैं,
आपकी मैं परम स्तुति करता।
मन बुद्धि, ब्रह्म सब के स्वामी आप हैं,
प्रभु आपको बारम्बार नमन, शरण लीजिये,
विद्वतजन यश फैलाते, स्तवन गाते,
समस्त लोक में स्तुति कर दिव्य लोक में जाऊँ॥
ॐ कर जप से देह स्थिर हैं,
प्राणवायु का निरोध हो रस प्राकट्य से,
सोमरस महानानद इसका पान करूँ,
मन विशुद्ध हो, नवल नवीन हैं।

मन्त्रः7-9

सवित्रा प्रसवेन जुषेत ब्रह्म पूर्व्यम्।
यत्र योनिं कृणवसे न हि ते पूर्तमक्षिपत् ॥7॥
त्रिरुन्नतं स्थाप्य समं शरीरं हृदीन्द्रियाणि मनसा सन्निवेश्य।
ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् स्रोतांसि सर्वाणि भयानकानि ॥8॥
प्राणान् प्रपीड्येह संयुक्तचेष्टः क्षीणे प्राणे नासिकयोच्छ्वसीत।
दुष्टाश्वयुक्तमिव वाहमेनं विद्वान् मनो धारयेताप्रमत्तः ॥9॥

हे श्रेष्ठ!
जगकर्ता प्रभु आपका सेवक,
मैं आपका साधक,
आपकी आराधना सदा करूँ,
आपकी शरण रहूँ,
प्रेम से आपको प्राप्त करूँ,
पूर्व कर्मों के बंधन तुझमे समर्पित करूँ।
ज्यूँ वक्षस्थल के साथ ग्रीवा को स्थिर रखा,
मन द्वारा इन्द्रियों को धीरे धीरे स्थापित किया,
प्रणव जप से नौका पार लगे,
प्रेम बैठा रखूँ नौका पर,
भयंकर प्रवाह मन का है,
यह नौका आप ही पार लगायें।
योग्य आहार विहार, योग्य कर्म करूँ,
प्राणायाम कर सूक्ष्म बन प्राण बाहर निकाल कर,
मन को विषयपूर्ति से वश में करूँ,
ज्यूँ तूफानी अश्व को सारथी वश में करता है।

<u>मन्त्रः10-12</u>

समे शुचौ शर्करावह्निवालिका विवर्जिते शब्दजलाश्रयादिभिः।
मनोनुकूले न तु चक्षुपीडने गुहानिवाताश्रयणे प्रयोजयेत्॥10॥
नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम्।
एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे॥11॥
पृथिव्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते पञ्चात्मके योगगुणे प्रवृत्ते।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम्॥12॥

हे योगेश्वर!
शुद्ध भूमि सम, तप, कंकर, धूल से रहित,
शांत नीरव, एकांत हो जहाँ,
मन को नेत्रों के मध्य गुफा सम एकांत
मन को ध्यानाकषित करूँ।
आपको प्राप्त करने हेतु
अनेकानेक ध्यान दृश्य बताये,
बीज, अंगिया, चन्द्र, स्फटिक मणि आदि दृश्य,
सूर्य, वायु, अग्नि, धूम्र, तेजपुंज भी बताया,
सब दृश्यों को ध्यान रख योग क्रिया से
आपको पाऊँ
ज्यूँ योगी पृथ्वी के पंच-महाभूतों को नियंत्रित
करते हैं,
पंचमहाभूतों से सम्बंधित पञ्चसिद्धि को सिद्ध
करते हैं,
योगाग्नि से प्रज्वलित देह
योगियों को रोग मुक्त रखे,
जरा-मृत्यु से दूर इच्छा मृत्यु प्राप्त करूँ।

मन्त्रः 13-15

लघुत्वमारोग्यमलोलुपत्वं वर्णप्रसादः स्वरसौष्ठवं च।
गन्धः शुभो मूत्रपुरीषमल्पं योगप्रवृत्तिं प्रथमां वदन्ति ॥13॥
यथैव बिंबं मृदयोपलिप्तं तेजोमयं भ्राजते तत् सुधान्तम्।
तद्वाऽऽत्मतत्त्वं प्रसमीक्ष्य देही एकः कृतार्थो भवते वीतशोकः ॥14॥
यदात्मतत्त्वेन तु ब्रह्मतत्त्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत्।
अजं ध्रुवं सर्वतत्त्वैर्विशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपापैः ॥15॥

हे नाथ!
योग क्रिया से मेरे शरीर को हल्का बनाओ,
रोग मुक्त बनाओ,
विषय लालसा से मुक्त करो,
देह को उज्जवल बनाओ,
वाणी को मधुर, सर्वांग सुवासित करो
मल मूत्र का कम त्याग हो
शुद्धि एवं सिद्धि बनी रहे।
ज्यूँ माटी में पड़ा रत्न
तेजोमय हो, धोने से खूब चमकता है,
प्रकाश पड़ने से प्रतिबिंबित करता है,
वैसे ही जीवात्मा योग करके
आत्म-तत्व को प्राप्त करती है,
दुःखरहित प्रसंग मिलता है,
मुझे भी प्रभु कृत कृत करो।
दीपक सम आत्म-तत्व को देखूँ,
आत्मा को आपके संग योगकाल में पाऊँ,
विशुद्ध निश्चल परमात्मा
योगी बन सब प्रकार के बंधन से मुक्त होऊँ।

मन्त्रः16-17

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥16॥
यो देवो अग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः ॥17॥

हे नाथ!
आप तो परम देव है,
समस्त जग में व्यापक हैं,
ब्रह्माण्ड में सर्वप्रथम आप ही आये,
जगत को प्राकट्य किया फिर भूमि को
सर्व ज्ञानी हैं,
आप अंतर्यामी हैं।
हे परमात्मा!
अग्नि में आप,
जल में आप,
व्यापक रूप हो आप,
समस्त विश्व में बसते आप,
औषधि में विराजते आप,
वनस्पति में भी आप,
आपको नमन! नमन! नमन!!!

अध्याय-3

मन्त्रः1-3

य एको जालवानीशत ईशनीभिः सर्वांल्लोकानीशत ईशनीभिः।
य एवैक उद्भवे सम्भवे च य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥1॥
एको हि रूद्रो न द्वितीयाय तस्थु र्य इमांल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले संसृज्य
विश्वा भुवनानि गोपाः ॥2॥
विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्यां धमति संपतत्रै-र्द्यावाभूमी जनयन् देव एकः ॥3॥

हे जग अधिष्ठाता!
आपने जगत को रचा एवं अपनी क्षमताओं से
हमें अवगत करवाया
शासन कर विविध लोकों पर; योग्य साम्राज्य किया,
बिना किसी अन्य के सहयोग के सृष्टि का
विस्तार किया,
प्रभु! जान सकूँ आपको,
यह कृपा कीजिये।
रूद्र रूप में समाहित प्रभु,
निज शासन बल से जग करते संचालित,
एक आप ही हैं, शक्ति बढ़ी जिनकी जग में,
न कोई अन्य कारण रूप
रक्षा करते आप,
अंत में लीन रहूँ, दया करें आप।
चक्षुओं से देखते समस्त विश्व को,
मुख से स्वयमेव ग्रहण करते सब प्रसाद
हाथों से सब वस्तुओं को अपनाते

आश्रितों की रक्षा करते,
जहाँ आपके चरण रहते,
पृथ्वी से गगन तक, सबकी रचना करने वाले
आप एक हैं, आप एक हैं,
आपने प्राणीमात्र को हाथों का एवं
पक्षियों को पंखों का आशीष दिया।

<u>मन्त्रः4-6</u>

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रूद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥4॥
या ते रूद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी।
तया नस्तनुवा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि ॥5॥
याभिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे।
शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत् ॥6॥

हे नाथ!
रूद्र रूप प्रभु-आप देवराज इंद्र से देवों को
उत्पन्न करते,
सबके स्वामी आप, महर्षि, सर्वज्ञ आप,
सृष्टि से पूर्व हिरण्यगर्भ को उत्पन्न किया
हे प्रभु! हमें सद्बुद्धि दें।
रूद्रदेव! आपकी कल्याणमयी शांत मूरत,
पुण्य प्रकाश उसमें,
दर्शन मात्र से सुख-प्राप्ति होती,
हे गिरिवासी! सुखकर्ता, शांति प्रदायक,
आपकी मूरत देख मैं धन्य हो रहा हूँ।
हे गिरिवासी, हे सुखदायक, हे हिमगिरी रक्षक,
हाथों में बाण ले फेंक जग को नष्ट करते

शांत हों,
मंगलरूप हों,
सुखदाता रहें,
सृष्टि की दुःख-स्थापना
आपको नहीं शोभती।

<u>मन्त्रः7-9</u>

ततः परं ब्रह्म परं बृहन्तं यथानिकायं सर्वभूतेषु गूढम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितार-मीशं तं ज्ञात्वाऽमृता भवन्ति ॥7॥
वेदाहमेतं पुरुषं महान्त-मादित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥8॥
यस्मात् परं नापरमस्ति किंचिद्य-स्मान्नणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित्।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येक-स्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ॥9॥

हे नाथ!
ब्रह्म जगत एवं जीव
की रचना की,
देह के अनुरूप प्राणी में यह स्थापित रहती है,
विश्व के परिवेश में आप महान एक ही हो,
मैं आपको ग्रहण करूँ,
जन्म रहे न कदापि।
अज्ञान रूपी अन्धकार; अतीत बन कर रह जाये,
सूर्यसम प्रकाश रूपी प्रभु मुझे प्राप्त हों,
मृत्यु का मानवी पद जान कर,
अमृत पद द्वारा अन्य मार्ग मिले,
एक यही मार्ग रहे।
कोई आपसे श्रेष्ठ नहीं,
न ही कोई आपसे सूक्ष्म,

महान भी नहीं कोई,
कोई व्यापक भी नहीं आप सा,
वृक्ष सा निश्छल
गगन सा स्थिर,
आपसे ही जग पूर्ण रूप से बना है।

<u>मन्त्रः10-12</u>

ततो यदुत्तरततं तदरूपमनामयम्।
य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति अथेतरे दुःखमेवापियन्ति ॥10॥
सर्वानन शिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः ॥11॥
महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्वस्यैष प्रवर्तकः।
सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः ॥12॥

हे नाथ!
रूप विकार से परे,
हिरण्यगर्भ से उत्तम,
अमर बन जानिए,
अन्य लोक दुःख में जो पड़े।
सबके मुख में, सबके सिर में, सबके ग्रीवा में,
सबके हृदय में वास करते आप,
सर्व व्यापक हो, सर्व मंगल कर्ता हो।
सबके स्वामी, सर्व समर्थ,
अविनाशी, ज्योति स्वरूप
निज प्राप्ति हेतु, उर में बैठते,
आकर्षण बढ़ाते,
तब जीव आपको प्राप्त करते,
प्राप्ति कार्य हेतु प्रयत्न शील
बन खूब सुख पाऊँ।

मन्त्रः 13-15

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥13॥
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
स भूमिं विश्वतो वृत्वा अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥14॥
पुरुष एवेदँ सर्वं यद् भूतं यच्च भव्यम्।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ॥15॥

हे स्वामी!
अंगुष्ठ प्रमाण हृदय में रहते हम
आप अन्तर्यामी, सबके मन के स्वामी,
मैं निर्मल मन से ध्यान धरूँ
आपको जान कर बंधन मुक्त बनूँ।
आपके सहस्त्रों नेत्र, सहस्त्रों मस्तक एवं
सहस्त्रों पग हैं
सब तरफ से व्यापक जग में आप हैं,
पर रहते हृदय में ही सदा
हृदय नाभि से दस
अंगुली ऊपर है,
आप वहाँ स्थित हैं।
भूत में क्या हुआ, भविष्य में क्या होगा,
वर्तमान में जीवित रहना ही सिखाया
सर्व जगत आपका रूप है
जो आप जगत रूप में प्रकटे
मुक्ति ही पानी है॥

मन्त्रः16-18

सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥16॥
सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम्।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं सुहृत् ॥17॥
नवद्वारे पुरे देही हंसो लेलायते बहिः।
वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ॥18॥

हे स्वामी!
जिनके सब हाथ हैं, पैर हैं, आँखें हैं, सर हैं,
मुख हैं और कान हैं,
जगत में सर्वप्रकार व्यापक है।
इन्द्रियाँ जिन्हें नहीं
वे जो इन्द्रियों को जानता हैं
वे सबके स्वामी, सबके शासक
सबके आश्रय दाता हैं।
स्थावर-जंगम सब को रखूँ वश में
नवद्वार के नगर में
वाह्य जग में वास करूँ॥

मन्त्रः19-21

अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ॥19॥
अणोरणीयान् महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ॥20॥
वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात्।
जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम् ॥21॥

हे नाथ!
हाथ-पाँव नहीं फिर भी

सब वस्तुओं को ग्रहण करते आप,
अतिवेग से सब देखे
आँख बिना सब जाने
कान बिना सब सुने
ज्ञेय को भी जाने
उसे कोई नहीं जानता।
आप सूक्ष्म से अति सूक्ष्म
विशाल से अति विशाल
जीवों के हेतु रहते हृदय गुफा में
संकल्प विहीन विकल्प नहीं
आपकी महिमा को जो जानता
वही दुःख बंधन को तारता।
आपको अजन्मा अनित्य कहा जाता है
सर्व स्थल घट-घट व्यापक माना जाता है
जरा मृत्यु सी व्याधि से विकार से परे कहा जाता है
मैं आप पूर्ण परमेश्वर को जानूँ॥

अध्याय-4

मन्त्रः1-3

य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद् वरणाननेकान् निहितार्थो दधाति।
विचैति चान्ते विश्वमादौ च देवः स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ॥1॥
तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदापस्तत् प्रजापतिः ॥2॥
त्वं स्त्री पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ॥3॥

हे जगदीश!
एक वर्ण अतीत में कोई गूढ़ प्रयोजन
शक्ति योग अनेक प्रकार के निहित अर्थों में
धारण कर
जगत रूप में प्रकट
जगत धारण करें
जगत में लीन रहते
आप हैं अद्वितीय
आप मुझे मंगल बुद्धि दें।
सूर्य से अग्नि, वायु शशि,
नक्षत्र वाणी ब्रह्मा से प्रजापति।
आप स्त्री, आप पुरुष, आप कुमारी, आप कुमार
वृद्ध लिए लकुटी आप,
विराट रूप आप,
मुख आपका जग सम
आप विश्व रूप हो।

मन्त्रः4-6

नीलः पतङ्गो हरितो लोहिताक्षस्तडिद्गर्भ ऋतवः समुद्राः।
अनादिमत् त्वं विभुत्वेन वर्तसे यतो जातानि भुवनानि विश्वा ॥4॥
अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ॥5॥
द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥6॥

हे जगदीश्वर!
भ्रमर हो या नीलरंग पक्षी सब कुछ आप हैं,
चमकते बादल ऋतु के सागर आप हैं,
विश्व समस्त आपसे ही प्रकट हुआ
जड़ भी तू, चेतन भी तू,
प्रकृति के स्वामी आप,
जल हो या थल आप व्यापक हैं।
त्रिगुणों में अपरा प्रकृति बनी,
फिर बने सब पदार्थ त्रि रंगी जो कहाये
फिर प्रकृति परा बनी
जीव बने उससे, जीव भोगे अपरा से
कर्म फल सब मिले
मुझे ज्ञान दीजिए
न रहूँ प्रकृति वश,
सार ले छोड़ दूँ, बंधन में न रहूँ।
ज्यूँ एक ही वृक्ष पर दो पक्षी मित्र भावना से रहते
एक तो फल का स्वाद लेता
दूसरा मात्र दर्शन करता

जीवात्मा एवं परमात्मा भी इस देह में वैसे ही रहते
जीव कर्म का भोग करता
परमात्मा देखते
प्रभु मुझे वह ज्ञान प्राप्त हो जो आपने मेरे लिए रखा है॥

<u>**मन्त्रः7-9**</u>

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः॥7॥
ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते॥8॥
छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति।
अस्मान् मायी सृजते विश्वमेतत्तस्मिंश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः॥9॥

हे प्रभु!
जीव राग में डूबा है,
प्रभु! आपको देखता नहीं
मोह ग्रसित है, शोक ग्रसित है,
दीन है यह
भक्त बना मुझे आपकी सेवा में अनुरक्त करें,
आपकी महिमा का ज्ञान हो एवं शोक रहित बनूँ॥
आपको समस्त देव पूजते,
वेद आपमें समाहित,
अविनाशी प्रभु आप गगन सम व्यापक हो
वेदमंत्र का लाभ तो अनेक हैं
पर वेद आप में विद्यमान है
आपको जान लूँ,
आप सर्वत्र निवास करते।

वेदमंत्रों के छंद
यज्ञ व्रत के नियम
भूत वर्तमान भविष्य सब वर्णित वेदमंत्रों में
तत्व की सहायता से आप प्रकृति रचते
आपके स्वरूप को न भूल कर
बंधन में न बनूँ।

मन्त्रः10-12

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं च महेश्वरम्।
तस्यवयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत्॥10॥
यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको यस्मिन्निदाम् सं च विचैति सर्वम्।
तमीशानं वरदं देवमीड्यं निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति॥11॥
यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रूद्रो महर्षिः।
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु॥12॥

हे जगत के स्वामी!
माया तो प्रकृति है,
मायापति हैं आप
इस शक्ति को बहुरूप से
जगत में विस्तृत किया आपने।
सब योनियों के स्वामी आप,
आपमें ही सृष्टि विलीन होती,
प्रकट भी वहीं से होती,
सर्व नियंता परम आप हो,
हे वरदायक आपकी स्तुति करता रहूँ,
तत्व ज्ञान को जानता रहूँ,
सनातन शांति का लाभ हो,

परम शांति प्राप्त हो।
इन्द्रादि देवों को रूद्र रूप को आप बनाते
अत्यधिक बना, सर्वज्ञ महान बनते
ब्रह्मा से भी पहले आप थे,
मुझे आप मंगलबुद्धि प्रदान करें।

<u>मन्त्रः13-15</u>

यो देवानामधिपो यस्मिन्ल्लोका अधिश्रिताः।
य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥13॥
सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्त्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ॥14॥
स एव काले भुवनस्य गोप्ता विश्वाधिपः सर्वभूतेषु गूढः।
यस्मिन् युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनत्ति ॥15॥

हे नाथ!
हे सर्वदेवों के अधिपति!
सब लोगों के आश्रय दाता,
द्विपद-चतुर्पद प्राणी बनाये आपने,
आनंद प्रदाता
सब कुछ समर्पित आपको,
श्रद्धापूर्वक समर्पण भाव लिए शरण रहूँ।
सूक्ष्म से अति सूक्ष्म हृदय में वास करने वाले प्रभु
विश्व रचियेता एक होकर भी बहु रूप में रहने
वाले प्रभु
मंगलमय शांत ब्रह्म प्रभु
आपको जान पाऊँ
परम शांति प्राप्त करूँ।

हे जग रक्षक!
हे जग स्वामी!
सृष्टि धारी!
सब जीवों में निवास करने वाले प्रभु,
देव ऋषि ध्यान कर आपमें लीन रहते
जान कर आपको मृत्यु बंध से मुक्त होऊँ॥

<u>श्लोकः16-18</u>

घृतात् परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥16॥
एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति॥17॥
यदाऽतमस्तान्न दिवा न रात्रिः न सन्नचासच्छिव एव केवलः।
तदक्षरं तत् सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा च तस्मात् प्रसृता पुराणी॥18॥

हे जगदीश!
घृत समसार सबका,
प्राणियों में अति सूक्ष्म गूढ़,
सृष्टि में व्यापक एकमात्र आप हो,
मैं आपके रूप को जान बंधन मुक्त होऊँ।
विश्व रचयिता महात्मन सर्व शक्तिवान प्रभु,
सूक्ष्म रूप से हृदय में रहते
निर्मल उर को बुद्धि चित से ध्यान कर
आपको प्राप्त करूँ
मैं साधक प्राप्त कर अमर बनूँ।
अज्ञान रूपी तमस दूर हो,
दिवा रात्रि का भ्रम दूर हो,

सत्य असत्य से परे
मात्र मंगल तत्व जो है,
वह अविनाशी प्रभु सूर्य से भी श्रेष्ठ आप हो
मुझे वह परम ज्ञान दीजिए॥

मन्त्रः19-21

नैनमूर्ध्वं न तिर्यञ्चं न मध्ये न परिजग्रभत्।
न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद् यशः॥19॥
न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति॥20॥
अजात इत्येवं कश्चिद्भीरुः प्रपद्यते।
रूद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम्॥21॥

हे विधाता!
ऊपर से नीचे से आसपास से कैसे पकड़ूँ
मध्य भाग से प्रभु आपको जकड़ लूँ,
आपका नाम ही महान यश
यश सर्व स्थल
कोई उपमा आपकी कैसे करूँ।
सृष्टि में दिव्य रूप से प्रकट नहीं होते
प्राकृतिक नेत्र से आपके दर्शन नहीं होते
भक्तिमय चक्षु से जब मन में झाँक देखूँ
दिव्य आँखें प्राप्त हों तब
अमृत सदृस आप के दर्शन करूँ।
हे रूद्र!
अजन्मा सर्वदा आप,
चाहो तो जन्मते,
आप ही जन्म-मृत्यु से मुक्त कर सकते,

आपकी शरण हूँ
आज मंगल रूप प्रदान करें
भयमुक्त करें,
रूप आपका दर्शावें।

<u>मन्त्रः22</u>

मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा न अश्वेषु रीरिषः।
वीरान् मा नो रूद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदामित् त्वा हवामहे ॥22॥

हे स्वामी!
विभिन्न भेंटे मध्य में दे रहा
रक्षा करें हमारी,
कुपित कदापि न हों आप,
पुत्र-पौत्र की आयु वृद्धि हो,
धरा पर गौ-अश्व सम्पदा न घटे
धरा पर वीर पुत्र न घटें॥

अध्याय-5

मन्त्रः1-3

अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते विद्याविद्ये निहिते यत्र गूढे।
क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः ॥1॥
यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको विश्वानि रूपाणि योनीश्च सर्वाः।
ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानं च पश्येत् ॥2॥
एकैक जालं बहुधा विकुर्वन्नस्मिन् क्षेत्रे संहरत्येष देवः।
भूयः सृष्ट्वा पतयस्तथेशः सर्वाधिपत्यं कुरुते महात्मा ॥3॥

हे स्वामी!
ब्रह्मा से भी उत्तम, अनंत अविनाशी,
विद्या एवं अविद्या के आश्रय प्रदाता
हे ब्रह्म!
परिवर्तन शील जड़ प्रकृति ही अविद्या है,
नित्य जीव अनन्य शासक विद्या है।
इस भाँति रूपरंग की आकृति के स्वामी आप
आपके अधीन पञ्च भूत
सर्व प्रथम आप ही आये
ब्रह्मा ने भी पुष्ट किया
आप ही सर्व ज्ञाता।
इस जग में पंचभूत रचा आपने
नामरूप में फिर परिवर्तित किया
फिर नाश किया आपने,
सब लोकों को रचा उसके शासनकर्ता को रचा
आप सर्व अधिपति प्रभु मुझे संरक्षण दें।

मन्त्रः4-6

सर्वा दिश ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक् प्रकाशयन् भ्राजते यद्वनड्वान्।
एवं स देवो भगवान् वरेण्यो योनिस्वभावानधितिष्ठत्येकः ॥4॥
यच्च स्वभावं पचति विश्वयोनिः पाच्यांश्च सर्वान् परिणामयेद् यः।
सर्वमेतद् विश्वमधितिष्ठत्येको गुणांश्च सर्वान् विनियोजयेद् यः ॥5॥
तद् वेदगुह्योपनिषत्सु गूढं तद् ब्रह्मा वेदते ब्रह्मयोनिम्।
ये पूर्वं देवा ऋषयश्च तद् विदुस्ते तन्मया अमृता वै बभूवुः ॥6॥

हे जग रचयिता!
ज्यूँ सूर्य अकेला सब दिशाओं में प्रकाश देता,
आप समस्त प्रकृति को
शक्ति दे काम करने की प्रेरणा देते।
आप ही कारक आप ही कारण
संकल्प रूपी तप कर्ता
प्रकृति को दें सामर्थ्य,
रूपरंग प्रदान करें,
सत्य हीन गुण साथ
जीव सब योग करे
विश्व की व्यवस्था करते हैं आप।
उपनिषदों में सूक्ष्म रूप से वर्णन आपका
वेद प्रकट हुए उनसे
ब्रह्मा ने बताया
फिर ऋषि मुनि को ज्ञात हुआ
यह अमृत सम हैं
वेदों से वेदांत तक का
ज्ञान हमें प्रदान करें।

मन्त्रः7-9

गुणान्वयो यः फलकर्मकर्ता कृतस्य तस्यैव स चोपभोक्ता।
स विश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा प्राणाधिपः सञ्चरति स्वकर्मभिः ॥7 ॥
अङ्गुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः सङ्कल्पाहङ्कारसमन्वितो यः ।
बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रोऽप्यपरोऽपि दृष्टः ॥8 ॥
बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ॥9 ॥

हे नाथ!
मैं जीवधारी गुणों से बँधा जन्म-मरण में भटक रहा
अपने कर्मों के अनुसार भोग भोग रहा
त्रिगुण से बँधा त्रिगति ही पाऊँगा
मुक्त करें प्रभु।
अंगुष्ठ प्रमाण बन जीव में समाहित,
सूर्य सम तेज़ स्वरूप होते आप
अहंकार संकल्प से भरपूर
बुद्धि एवं गुणों से भी भरपूर
ममतामय जीव निज गुणों से चूर
मैं सदा आपसे जुड़ूँ,
कृपया ज्ञान सूक्ष्म दीजिये।
एक बाल के अन्तः भाग के सहस्त्र टुकड़ों को
पुनः सहस्त्र टुकड़ों में बाँटे
इतने सूक्ष्म जीव का निर्माण किया
आपकी शक्ति अनंत
आप व्यापक हो प्रभु।

मन्त्रः 10-12

नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेने तेने स युज्यते ॥10॥
सङ्कल्पनस्पर्शनदृष्टिमोहैर्ग्रासांबुवृष्ट्यात्मविवृद्धिजन्म।
कर्मानुगान्यनुक्रमेण देही स्थानेषु रूपाण्यभिसज़्प्रपद्यते ॥11॥
स्थूलानि सूक्ष्माणि बहूनि चैव रूपाणि देही स्वगुणैर्वृणोति।
क्रियागुणैरात्मगुणैश्च तेषां संयोगहेतुरपरोऽपि दृष्टः ॥12॥

हे नाथ!
जीवात्मा; न स्त्री, न पुरुष, न नपुंसक
जब देह धरे आत्मा तो होती जीवात्मा
स्त्री-पुरुष का भेद तो देह से है
भेद विहीन जीव है उपाधि तो परे है।
विचारों से स्पर्श, दृष्टि से मोह, अन्नजल से वृष्टि,
सजीव देह की वृष्टि इन सब से होती,
यह सब तो देह सहवास के साधन
गर्भ में आ भोजन-जल से देह निर्माण करते
अथवा भिन्न भिन्न प्रकार से पोषण होता
संकल्प वृद्धि से उक्तिगत योनि में प्रवेश करते
आसक्ति अनुसार मत्स्य योनि, पशु योनि,
वृष्टि मात्र से वृक्ष योनि,
लताओं से औषधि
अनेकों प्रकार से जग में पोषण होता है
कर्मानुसार योनि होती प्राप्त।
निज कर्म से बंधे
मन इन्द्रियों में विचरता

जीव अनेक जन्म लेते
मोह-ममता के पोषण हेतु
कर्म निर्वहन हेतु स्वतंत्र जन्म लेते
अथ मुझे भी योग्य योनि में आप जन्माना॥

<u>मन्त्रः13-14</u>

अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥13॥
भावग्राह्यमनीडाख्यं भावाभावकरं शिवम्।
कलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम्॥14॥

हे स्वामी!
जग व्यापक हैं आप
आप आदि अंत मध्य विहीन
जग के निर्माता-धर्ता
एक होते हुए अनेक रूप में आप
सर्वदा के लिए बंधन मुक्त करें प्रभु।
जग के कर्ता धर्ता
बिन आधार आप
आपसे भक्ति भाव से मिलता रहूँ
कल्याण रूप आप आयें,
देह छूटे बंधन मुक्त होऊँ॥

अध्याय-6

मन्त्रः1-3

स्वभावमेके कवयो वदन्ति कालं तथान्ये परिमुह्यमानाः।
देवस्यैष महिमा तु लोके येनेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम् ॥1॥
येनावृतं नित्यमिदं हि सर्वं ज्ञः कालकारो गुणी सर्वविद् यः।
तेनेशितं कर्म विवर्तते ह पृथिव्यप्तेजोनिलखानि चिन्त्यम् ॥2॥
तत्कर्म कृत्वा विनिवर्त्य भूयस्तत्त्वस्य तावेन समेत्य योगम्।
एकेन द्वाभ्यां त्रिभिरष्टभिर्वा कालेन चैवात्मगुणैश्च सूक्ष्मैः ॥3॥

हे ईश!
समस्त पदार्थों की निहित शक्ति
जगत का कारण है,
समय काल की भी शक्ति
जगत कारण है,
मोहग्रस्त लोग इसे नहीं पहचानते,
आप ही हो जो जगत को चलाते प्रभु।
यह जगत जिनसे व्याप्त,
जो है कारणों का कारण,
सर्वगुणों का ज्ञाता जो,
ज्ञान रूप सत्य का सहाय जो,
आप हो जो इस जग को
इतनी श्रेष्ठता से संभालते,
पृथ्वी, जल, तेज सबसे प्रभु आप शक्ति देते।
जड़ तत्व रचा अति ध्यान पूर्वक
फिर रचे चेतन तत्व
जड़ चेतन के योग से सृष्टि रची,

एक अविद्या, दो पाप-पुण्य, त्रिगुण बनाए
अष्ट प्रकृति, काल रचे
फिर बनाए
अहम, ममता, आदि गुण से आत्मा
जीव से सम्बन्ध बना जगत बनाया।

<u>मन्त्रः4-6</u>

आरभ्य कर्माणि गुणान्वितानि भावांश्च सर्वान् विनियोजयेद्यः।
तेषामभावे कृतकर्मनाशः कर्मक्षये याति स तत्त्वतोऽन्यः ॥4॥
आदिः स संयोगनिमित्तहेतुः परस्त्रिकालादकलोऽपि दृष्टः।
तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यं देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम् ॥5॥
स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात् प्रपञ्चः परिवर्ततेऽयम्।
धर्मावहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम ॥6॥

हे स्वामी!
त्रिगुण के सर्व कर्म से जो साधक जीवन
आरंभ करता
अहम एवं ममता आपके चरणों में समर्पित
करता रहूँ
मेरे कर्म पूर्व कर्मों से भी विनिष्ट होते
भिन्न जीव जड़ तत्व में आपको मैं पाऊँ।
आदि जगत के परमात्मा आप,
आप कालातीत सकल
जीव एवं प्रकृति के संयोग के कारण आप,
अंतस में आप, जग में आप,
भक्ति प्रेम की गाथा पुरानों को नमन।
संसार चलाते हो और संसार से भिन्न हो,
काल से काल तथा आसक्ति रहित हो
धर्म वृद्धि पाप विनाशक ऐश्वर्य के स्वामी
जगताधार, ह्रदय में विराज अमर करो।

मन्त्रः7-9

तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्॥7॥
न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चा यधिकश्च दृश्यते।
परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च॥8॥
न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम्।
स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः॥9॥

हे नाथ!
महान ईश्वर, देवों के देव,
पति के पति, जग स्वामी, आपकी स्तुति करूँ
मुझे उत्तम बनायें ताकि मैं आप को जान सकूँ॥
देह नहीं, इन्द्रियाँ नहीं,
फिर भी आपसे उत्तम कोई नहीं
ज्ञान, कर्म, बल की शक्ति अपार, दिव्य
जग का सारा ज्ञान एवं कर्म बल आपके
नजदीक भी नहीं।
जो है सबका स्वामी, सबका शासक,
कोई नहीं उसका शासक,
कोई चिन्ह विशेष नहीं,
सर्व व्यापक हैं आप,
देवधि देव सिर्फ आप
कोई आपका रचयिता नहीं, कोई आपका
स्वामी नहीं।

<u>मन्त्रः10-12</u>

यस्तन्तुनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतः।
देव एकः स्वमावृणोति स नो दधातु ब्रह्माप्ययम्॥10॥
एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥11॥
एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति।
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्॥12॥

हे स्वामी!
ज्यूँ जाल में मकड़ी अपने अंग छुपाती है,
वैसे ही निज सामर्थ्य से अंगों में आप वास करते हैं
अव्यक्त यह सामान्य जन न देख सकें,
आप मुझे आश्रय दें ताकि मैं देख सकूँ।
हे परमदेवक! आप हृदय गुहा में वास करते
सकल व्यापक अंतर्यामी प्राणी में रहते
कर्म का फल आप ही देते,
आश्रय प्रदाता आप,
सर्व साक्षी, चेतन केवल शुद्ध गुणों के दाता।
एक होकर अनेक जीवों के शासक,
एक बीज प्रकृति का होकर बहु विधि जग रचते,
धीर बनू, हृदय में रहते प्रभु का दर्शन करूँ
सुख मिले परमानन्द मिले।

<u>मन्त्रः13-15</u>

नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको
बहूनां यो विदधाति कामान्।
तत्कारणं सांख्ययोगाधिगज़्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥13॥
न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥14॥
एको हंसः भुवनस्यास्य मध्ये स एवाग्निः सलिले संनिविष्टः।
तमेव विदित्वा अतिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ॥15॥

हे नाथ!
एक नित्य चेतन प्रभु
कर्म भोग देते आप
अनेक नित्य चेतन जीवों को आप भोग दें
ज्ञान कर्म से प्राप्त हो
आपके कारण
सब जान बंधन मुक्त होऊँ।
सूर्य प्रभा सम चन्द्र प्रभा नहीं
चपला न चमके फिर भी अग्नि प्रज्वलित होती,
इस प्रकाश से पूर्ण जग प्रकाशवान है,
आप प्रकाश देते सब पदार्थ प्रकाशित होते।
ब्रह्माण्ड तेजोमय करते,
आप व्यापक हैं,
जल में अग्नि नहीं रहती
परम सत्य आप ही जानते
मृत्यु पर विजयी हो
परमधाम मिले आपकी शरण पड़ा॥

मन्त्रः 16-18

स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद् यः।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेशः संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः ॥16॥
स तन्मयो ह्यमृत ईशसंस्थो ज्ञः सर्वगो भुवनस्यास्य गोप्ता।
य ईशेऽस्य जगतो नित्यमेव नान्यो हेतुर्विद्यत ईशनाय ॥17॥

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै।
तं ह देवं आत्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥18॥

हे स्वामी!
सर्व करता, सर्वज्ञ,
स्वयं प्रकट ईश्वर आप
काल कालका, दैवी गुणों के ज्ञाता आप
प्रकृति जीवों की स्वामी,
आप प्रकृति स्वामी,
जन्म मृत्यु मोक्ष के कारक,
सत्य सत के धारक आप।
अमृतमयी आप स्व-स्वरूप में तन्मय हो
लोकपाल के अंतर्यामी आप आत्मरूप स्थित हो,
पूर्ण सर्वग्य ब्रह्माण्ड रक्षक
शासन करते जग का,
अन्य कोई शासक नहीं।
सर्व प्रथम ब्रह्मा उपजे
ब्रह्मा ने वेदों को बनाया,
वेद आत्म ज्ञान देते, बुद्धि देते
प्रभु मैं आपकी शरण आऊँ
मुझे बंधन मुक्त करें।

मन्त्रः19-21

निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम्।
अमृतस्य परं सेतुं दग्धेन्दनमिवानलम् ॥19॥
यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ॥20॥
तपःप्रभावाद् देवप्रसादाच्च ब्रह्म ह श्वेताश्वतरोऽथ विद्वान् ।
अत्याश्रमिज़्यः परमं पवित्रं प्रोवाच सज़्यगृषिसङ्घजुष्टम् ॥21॥

हे प्रभु!
कलारहित है जो,
शांत, विमल, निर्दोष है जो
अमृत सेतु है जो,
जले हुए काष्ठ में अग्नि सम
अत्यंत ज्योर्तिमय ज्ञान रूप परम चेतन प्रभु
आपकी शरण आऊँ,
हे शान्तिनिकेतन! शांति दें।
चर्म सम गगन को अंग से लपेट ले
आपको जान समस्त दुःखों से निवृत हो जाए
सृष्टि में कोई गगन न लपेट सके
उनके दुःख नहीं मिटते।
श्वेताश्वतर महा ऋषि तपस्या कर
प्रभु! आपकी कृपा से आपको जान सके,
ऋषि से परम ब्रह्म ज्ञान तत्व अन्य ऋषियों को मिला
उपदेश अभिमान पूर्वक आश्रम में जाना।

मन्त्रः22-23

वेदान्ते परमं गुह्यं पुराकल्पे प्रचोदितम्।
नाप्रशान्ताय दातव्यं नापुत्रायाशिष्याय वा पुनः ॥22॥
यस्य देवे परा भक्तिः यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥23॥
प्रकाशन्ते महात्मन इति।

हे नाथ!
पूर्व कल्प में ज्ञान हेतु उपनिषद में वर्णन किया आपने,
शांत चित मन मेरा हो

ज्ञान प्राप्त कर सकूँ,
पुत्र न हो, शिष्य न हो,
उन्हें ज्ञान कैसे मिले
देव पुत्र योग्य हो तो मिले।
आप में परम भक्ति हों,
गुरु में भक्ति हो,
मैं यह रहस्यमय ज्ञान प्राप्त कर सकूँ,
मेरे अंतस में स्पष्ट रूप से यह ज्ञान प्राप्त हो,
कृपा करे प्रभु॥

॥ कृष्ण यजुर्वेद वर्णित श्वेताश्वतर उपनिषद समाप्त॥

परिचय

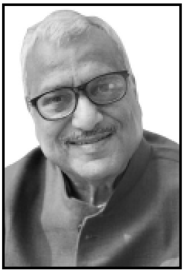

सुरेश चौधरी 'इंदु'

पिता का नाम : स्व. भोलाराम चौधरी
माता का नाम : श्रीमती दुर्गावती चौधरी
जन्म स्थान : जमशेदपुर (वर्तमान में झारखंड)
जन्म तिथि : 14 जुलाई, 1952

शिक्षा : विज्ञान में स्नातक, चार्टर्ड एकाउंटेंट्स, एकोल सुपेरियारे रोबर्ट दी सौबोर्न फ्रांस द्वारा पीएचडी (अर्थ एवं वित्त विश्लेषण) में स्वीकृत मानद; (BSc, FCA, PhD) आरंभिक शिक्षा जमशेदपुर भारतीय मोडल स्कूल कक्षा 7 तक, फिर ADLS हाईस्कूल में मैट्रिक 1963-1967, फिर जमशेदपुर को-ऑपरेटिव कॉलेज से विज्ञान में स्नातक (1967-1971)। इंस्टीट्यूट ऑफ चार्टर्ड एकाउंटेंट्स कोलकाता (दास एंड प्रसाद) से चार्टर्ड (1972-1976)।

जीवन वृतांत : 1977-1982, उषा अलॉयस एंड स्टील्स में मैनेजर फाइनेंस के रूप में कार्य। 1982-83 बिहार अलॉइ स्टील्स लिमिटेड में वाइस प्रेसीडेंट कमर्शियल। तत्पश्चात् निजी इस्पात एवं इस्पात से संबंधित कुल 18 कारखाने बड़ोदरा, गोधरा, मेघनगर, जमशेदपुर, चांडिल, बड़बिल, कोलकाता में लगाये। 2008 से 2011 तक आर्थिक सलाहकार के रूप में कार्य किया।

लेखन में रूचि 2011 से स्वास्थ्य के चलते। सभी कार्य छोड़कर केवल अध्ययन एवं लेखन की ओर झुकाव, तब से नियमित लेखन एवं शोध कार्य। लेखन में विशेष कर-हाइकु, मुक्त छंद, छंद मुक्त, छंद, बाल कविता, आलेख, आध्यात्म, शोध वैदिक सनातन दर्शन एवं आर्थिक विषय पर। भारत की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेखों एवं कविताओं का नियमित प्रकाशन, अंतर्राष्ट्रीय ब्लॉग अकेदेमिया, एडु में नियमित लेख प्रकाशन।

'ताजा टीवी' एवं 'दूरदर्शन' पर समय-समय पर चर्चाओं में भागीदारी।

अनुवादित कार्य का विवरण

1.1 श्री दुर्गतिविनाशनी : श्री दुर्गा सप्तशती का भावानुवाद छंद मुक्त लयबद्ध जिसकी विवेचना महामंडलेश्वर साक्षी जी महाराज एवं प्रसिद्ध साहित्य समीक्षक श्री वीरेन्द्र गोस्वामी, जयपुर ने लिखी। पुस्तक के दो संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

1.2 प्रांजलि (भाग-2) : श्रीमद्भागवत एवं वेदों के 101 सूक्तों पर आधारित छंद मुक्त प्रार्थनाएँ, समीक्षा डॉ. उम्मेद सिंह बैद, पुस्तक में प्रार्थना के साथ उधृत श्लाकों की संख्या भी दी गयी है।

1.3 वेद से वेदांत तक-मूल पाठ सहित : 9 उपनिषद : ईशोपनिषद्, केन उपनिषद, कठोपनिषद, प्रश्न उपनिषद, मंडूक उनिपद, मांडूक्य उपनिषद, ऐतरिय उपनिषद, तैतरीय उपनिषद, श्वेताश्वेतर उपनिषद का छंद मुक्त काव्यात्मक अनुवाद, पुरुष सूक्त एवं नासदीय सूक्त का छंदोबद्ध अनुवाद।

समीक्षा : अंशु त्रिपाठी, प्रसिद्ध कवयित्री, डॉ. अल्पना गोस्वामी, विभागाध्यक्ष कलकत्ता विश्वविद्यालय संस्कृत विभाग।

1.4 आदिशंकर रसमाधुरी :

मूल संस्कृत पाठ के साथ : आदि शंकराचार्य के निम्नलिखित स्त्रोतों का छंदोबद्ध अनुवाद

1. भजगोविंद : चौपाई एवं दोहों में अनुवाद
2. महिषासुर मर्दिनी : कनक मंजरी छंद
3. देव्यपराधक्षमापन स्तोत्रम् : हरिगीतिका छंद में
4. निर्वाण षटकम : कुकुम्भ छंद में
5. श्री गंगा स्त्रोत : लावणी छंद में अनुवाद
6. कनकधारा स्त्रोत : मूल छंद में

आशीर्वचन प्रसिद्ध गौ भक्त संत एवं रामजन्मभूमि के प्रमुख आचार्य धर्मेन्द्र द्वारा।

1.5 हर हर महादेव : मूल संस्कृत पाठ के साथ मंत्रों एवं स्त्रोतों का छंदोबद्ध अनुवाद : विषय की विषद व्याख्या स्व-लिखित

1. शिव स्तुति-स्व-रचित संस्कृत में
2. महामृत्युंजय मंत्र : धनाक्षरी में
3. शिव पंचार मंत्र : चतुष्पदी में
4. द्वादश ज्योर्तिलिंग : चतुष्पदी में
5. रावण रचित शिवताण्डवस्तोत्रज्

यह स्त्रोत अनंग शेखर छंद में लिखा गया है, इसे इसी छंद में अनुवाद किया है।

6. श्री शिव महिम्न स्तोत्र : चतुष्पदी एवं लावणी छंद
7. रूद्राष्टक (तुलसीदास रचित) : चतुष्पदी में
8. शिव मानस पूजा स्त्रोत : षष्टपदी में आशीर्वचन आचार्य धर्मेन्द्र जी एवं बालव्यास जी द्वारा

1.6 सुभाषितम : मूल संस्कृत श्लोकों सहित भारतीय नीतिशास्त्र एवं विभिन्न सुभाषित 108-108 श्लोकों की दो माला का दोहों में अनुवाद।

1.7 गोपी गीत : यूँ तो गोपी गीत 19 श्लोकों का एक गीत जो इंदिरा छंद में लिखा गया है, परंतु यह गहन शोध का विषय है एवं प्रत्येक श्लोक अध्यात्म की ऊँचाई की छूता दृष्टिगत है। इसका अनुवाद भी इंदिरा छंद में ही किया है और विस्तार और विस्तृत भाष्य विभिन्न छंदों में है। यह एक खंड काव्य है।

1.8 सुर तरिंगिणी : देव सरिता माँ गंगा की समस्त कहानी एवं संस्कृत मूल के साथ गंगा लहरी, गंगा स्त्रोत, गंगाष्टकम (कालिदास, आदिशंकर, वाल्मीकि द्वारा रचित) का छंदों में अनुवाद, गंगा का अवतरण हुआ है तो क्या हुआ होगा व्यवहारिक दृष्टिकोण।

1.9 अप्रकाशित : भागवत में वर्णित अनेक गीतों एवं स्तुतियों जैसे, भ्रमर गीत, वेणु गीत, वर्षा गीत, कुन्ती द्वारा स्तुति, गर्भ स्तुति, गज मोक्ष मंत्र आदि का मूल संस्कृत पाठ सहित विभिन्न छंदों में अनुवाद। **विवरण इस प्रकार है :-**

क्रम	सूक्त/गीत/स्तुति वेदों से	मूल छंद	अनुवाद का छंद
1.	पुरुष सूक्त	निचृदनुष्टुप	चतुष्पदी
2.	नाशदीय सूक्त	नीचृत्रिष्टुप	चतुष्पदी
3.	हिरण्यगर्भ सूक्त	त्रिषटुप	लावणी
4.	संज्ञान सूक्त	विराननुष्टुप	गीतिका
5.	श्री सूक्त	महा जगति	हरिगीतिका
	भागवत के गीत/स्तुति		
6.	भ्रमर गीत	शार्दूलविक्रीडीत	हरिगीतिका
7.	वर्षा गीत	वसांततालिका	दोहा-चौपाई
8.	यूगल गीत	स्वागता	स्वागता
9.	वेणु गीत	वंशस्थ	हरिगीतिका
10.	प्रणय गीत	उपेन्द्रवज्रा	कुकुम्भ
11.	धुन गीत	वसंततालिका	कुकुम्भ
12.	गजेन्द्र मोक्ष	स्तरगधरा	दोहा-चौपाई
13.	कुंती स्तुति		चतुष्पदी
14.	वसुदेव स्तुति		चतुष्पदी
15.	गर्भ स्तुति		धनाक्षरी
16.	चतुर्शलोकी भागवत		धनाक्षरी
17.	अन्य: कृष्णाष्टकम	पैंचचामर	पैंचचामर

अन्य भाषा से अनुवाद

2.10 अड़सठशरद रवीन्द्र की शरण : रवीन्द्र के मूल 68 बंगला गीतों को देवनागरी में लिखकर अनुवाद प्रथम अनुवाद है, जो छंदबद्ध है। अभी तक जितने भी अनुवाद हुए हैं, वे सब छंद मुक्त अतुकांत या तुकांत अनुवाद ही हुए हैं। इसकी समीक्षा प.बंगाल के पूर्व राज्यपाल केशरीनाथ त्रिपाठी जी, कलकत्ता विश्वविद्यालय की विभागाध्यक्ष डॉ. राजश्री शुक्ल, प.बंगाल शिक्षण विश्वविद्यालय की उपकुलपति डॉ. सोमा बंदोपाध्याय एवं पं. सुरेश नीरव ने की है।

अध्यात्म एवं धर्म पर आधारित पुस्तकें

3.11 भारतीय दर्शन : भारत के मुक्त 6 दर्शनों का परिचय। इसमें सनातन धर्म के आस्तिक दर्शनों की प्रारंभिक जानकारी है।

3.12 भारत की अन्य दर्शन : भारत के अन्य दर्शन जिन्हें नास्तिक दर्शन कहा गया है। उनके बारे में प्रारंभिक जानकारी, ये दर्शन जैसे चवार्क, बुद्ध, जैन दर्शन हैं।

3.13 वेदान्त : आदि शंकराचार्य द्वारा चार धामों के चार महावाक्य की विस्तृत चर्चा, जिसकी भूमिका लिखी है दर्शन के महाज्ञानी डॉ. उम्मेद सिंह वैद ने।

3.14 श्रीमद्भागवत महापुराण-परिचय एवं समीक्षा : श्रीमद्भागवत को पंचम वेद भी कहा गया है पर आजकल हर गली-मोहल्ले में हम भागवत के पाठ पर फिल्मी तर्ज के गानों पर लिखे भजनों पर नृत्य देखते हैं। एक व्यवहारिक दृष्टि से भागवत की समीक्षा की गई है, इसमें भागवत कथा के बारे में नहीं बल्कि उसके लिखने के उद्देश्य के बारे में बताया गया है।

3.15 वेदों का परिचय एवं समीक्षा : चार वेद क्या है। इनमें क्या विषय वस्तु है। इनका भाष्य किसने-किसने लिखा है। उन भाष्यों में क्या है। समुचित जानकारी जिसे एक हिन्दू को ही नहीं बल्कि विश्व के हर प्राणी को जानना आवश्यक है।

3.16 मनुस्मृति-परिचय एवं समीक्षा : कालांतर में मनुस्मृति को अभिशाप घोषित कर दिया गया है, जबकि यह हर भारतीय की और भारतीय संस्कृति की रूलबुक है। इसमें जन्म से मृत्यु तक के सभी संस्कारों के निर्वहन का नियम बताया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में प्रेक्षप मंत्रों एवं शंकाओं का निवारण करने का प्रयत्न किया गया है।

3.17 भ्रम और भ्रांतियाँ : सनातन धर्म में व्याप्त भ्रम जैसे दलित का शोषण 5000 वर्षों से हो रहा है इत्यादि का तथ्यपरक उत्तर, कई भ्रांतियाँ दूर होंगी इसे पढ़ने से।

शोध पुस्तक

3.18 चमत्कृत करती भाषा संस्कृत : संस्कृत कितनी चमत्कारी भाषा है, उसके हर पहलू पर क्रमश: आलेख लिखे थे, उनका संग्रह इस पुस्तक में है।

काव्य

4.19 तिमिर ढलेगा : आशाओं को जागृत करती 101 प्रेरक कविताओं की पुस्तक जिसका तीसरा संस्करण छप कर आ चुका है।

4.20 बुलबुले-सी जिंदगी : 101 छंद मुक्त कविताएँ जीवन के विभिन्न पहलुओं पर लिखी हुई, जिसकी समीक्षा प्रसिद्ध गीतकार रमेन्द्र मोहन त्रिपाठी एवं प्रसिद्ध लेखक शिखर चंद जैन ने लिखी है, पुस्तक का दूसरा संस्करण उपलब्ध है।

4.21 कुछ माणिक कुछ मोती : प्रांजल हिन्दी में रचित छंदबद्ध कविताएँ अलग-अलग विषय पर क्रमबद्ध, समीक्षा प्रख्यात गीतकार श्री विष्णु सक्सेना, श्रीमती सरिता शर्मा एवं प्रख्यात साहित्यकार डॉ. प्रेम शंकर त्रिपाठी ने लिखी हैं, पुस्तक आर्ट पेपर पर बहुरंगी है।

4.22 प्रांजलि : जीवन दर्शन पर आधारित 101 प्रार्थनाएँ, छंद मुक्त, समीक्षा वीरेन्द्र गोस्वामी, सर्वेश अस्थाना एवं भागवताचार्य पं. श्रीकांत शर्मा बालव्यास जी ने लिखी है। पुस्तक के दो संस्करण आ चुके हैं।

बाल गीत

4.23 आसमान को छू लें : जयपुर के कल्याण सिंह शेखावत के संग यह बाल गीत की पुस्तक बहुरंगी बड़ी साइज में बालकों को मोहती बनी है, जिसकी समीक्षा प्रसिद्ध बाल लेखक संजय जायसवाल 'संजय' एवं आकाशवाणी, कोलकाता की उद्घोषिका सविता पोद्दार ने लिखी है।

अन्य काव्य

4.24 हे माँ : कुल देवी शक्ति स्वरूप माँ जीण भवानी को समर्पित पुस्तिका जिसमें संस्कृत स्तुति से आरंभ कर के 18 सनातन छंदों की रचनाएँ लिखी गई है।

4.25 माँ : मेरी जननी को हर वर्ष काव्याभ्ली देता रहा हूँ, उनके देहावसान पर समर्पित पुस्तिका, जिसमें 20 गीत छंद बद्ध एवं छंद मुक्त दोनों है।

4.26 शून्य से शून्य तक : दृश्य बनाते हुए 81 कविताएं जो जीवन के विभिन्न आयामों पर लिखी गई है, ये कविताएं छंद मुक्त ले बद्ध है।

विविध

5.27 मूल्यांकन : भारतीय अर्थव्यवस्था का आंकलन 2019 में इसे स्व. विलास राव जी के सहयोग से लिखा था। भारत अर्थव्यवस्था के हर पहलू पर गहन चिंतन आंकड़ों के साथ एवं सुझाव प्रधानमंत्री कार्यालय भेजे गए, जिसमें कई सुझावों को मंजूरी मिली।

5.28 भारत की आर्थिक स्थिति में क्या उचित (प्रकाशनाधीन) : समय-समय पर भारतीय अर्थव्यवस्था पर लेख लिखता रहा हूँ। नोटबंदी का सुझाव भी देने वाले कुछ लोगों में से मैं भी था। इन लेखों को एकत्रित कर पुस्तक का रूप दिया गया है।

5.29 भारतीय काव्य संहिता : भारत में प्रचलित सभी काव्य विधाओं का विवरण लिखने की विधा कैसे लिखें, किन बातों का ध्यान रखें-छंद, छंद मुक्त, मुक्त छंद, हाइकु, गीतिका, गज़ल इत्यादि।

यात्रा संस्मरण

5.30 ऐक्सडेनल टूर इन हाइबेरनेसन : यात्रा संस्मरण, लेख की अनियोजित यात्रा के 7 माह जिसमें उसने पूरे भारत का भ्रमण किया। उन भ्रमणों का रोचक विवरण ललित निबंध रूप में। पुस्तक निखिल प्रकाशन आगरा से प्रकाशित।

संवत 2081 में प्रकाशित

5.31 : इंदु प्रभा - छंद बद्ध कविताओं का संग्रह जिन्हें विषयानुसार अनुक्रमित किया गया है।

5.32 : मैं जीवन दंड विधान हूं-नवगीत एवं छंद वद्ध गीतों का संग्रह

5.33 : लघु उपनिषद त्रयी (मांडूक्य, ईश, केन उपनिषद का व्यावहारिक अर्थों सहित भाष्य मूल श्लोक के साथ)

5.34 : इंदु पदावली (कृष्ण भक्ति पद) : 92 कृष्ण भक्ति के एवं 21 राम भक्ति के पद। पद जो एक लुप्त होती विधा है, उसे पुनर्जीवित करने का प्रयास।

5.35 : इंदु पदावली (भाग 2) निर्गुण पद : कबीर, रैदास, दादू इत्यादि संतों की परंपरा को बढ़ाते हुए 95 निर्गुण पद।

5.36 : दोहांजलि, निर्गुण सगुण एवं नीति परक 711 दोहों का अनुपम संग्रह जिसमें 51 दोहे मीतू कनोडिया जी के सौजन्य से समाहित किये गए हैं।

कुछ प्रमुख सम्मान :

1. भारत गौरव (इस्पात में अभूतपूर्व कार्य हेतु तत्कालीन इस्पात मंत्री के कर-कमलों से दिल्ली की एक स्वयंसेवी संस्था द्वारा।)
2. केंद्रीय सचिवालय द्वारा राजभाषा गौरव पश्चिम बंगाल के तत्कालीन राज्यपाल श्री केशरीनाथ त्रिपाठी जी द्वारा।
3. विद्या वाचस्पति की मानद उपाधि विक्रमशिला हिंदी विश्वविद्यालय द्वारा।

4. साहित्य शिरोमणि दामोदरदास चतुर्वेदी साहित्य शिखर सम्मान 2021 एवं 2022 (पूर्व में यह सम्मान अटल बिहारी वाजपेयी, पंडित गोपालदास नीरज, उदय्प्ताप सिंह जी इत्यादि को मिला है।)
5. श्री हनुमानप्रसाद पोद्दार साहित्य सम्मान, अखिल भारतीय अग्रवाल सम्मेलन पूर्वी सिंहभूम शाखा द्वारा।
6. साहित्य मार्तण्ड सम्मान प्रसिद्ध संस्था बिहार हिंदी सम्मेलनी, पटना द्वारा।
7. हिंदी साहित्य शिरोमणि मानद सम्मान, साहित्य मण्डल श्रीनाथ द्वारा।
8. 'हिंदी सेवा सम्मान' श्रवण संस्था व शोध संस्थान, हरिद्वार द्वारा।
9. कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' साहित्य रत्न सम्मान सह नगद राशि प्रख्यात संस्था अभ्युदय द्वारा।
10. मानद पीएचडी वैदिक हिंदी साहित्य में लेगॉस यूनिवर्सिटी की शोध इकाई 'इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ बिजनस मैनिज्मन्ट एंड रेसर्च टेक्नोलॉजी' द्वारा।

विशेष उपलब्धि : 1116 दिनों में 1000 भजन लिखकर विश्व कीर्तिमान स्थापित किया जो कि इंटरनेशनल बुक ऑफ रेकॉर्ड्स द्वारा प्रकाशित और प्रमाणित किया गया।

साहित्यिक एवं सामाजिक गतिविधि : अंतर्राष्ट्रीय संस्था रचनाकार (शुक्तिका इंडिया फाउंडेशन का एक प्रकल्प) के संस्थापक सभापति, संस्था प्रति वर्ष साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य हेतु दस व्यक्तियों को सम्मानित करती है एवं नगद राशि भी भेंट करती है।

शुक्तिका इंडिया फाउंडेशन के संस्थापक न्यासी जो कैंसर पीड़ित असहाय रोगियों के नि:शुल्क चिकित्सा की सुविधा प्रदान करती है।